मेरे दो शब्द

पाठक गण ! आपके सामने यह जैन भारती उपस्थित है मैंने इसे सुन्दर और सरल बनाने की चेष्टा की है। इनमें मुझे कहां तक सफलता प्राप्त हुई है इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूं।

मित्रवर पंडित सिद्धसेनजी साहित्य रत्न एक बार कलोल (गुजरात) उपदेशार्थ पधारे थे उन्होंने मेरा बनाया हुआ प्रद्युम्न चरित देखा। उस समय आपने कहा कि कोई ऐसा ग्रन्थ बनाइये जिससे हम भूत भविष्य और वर्तमान को सामाजिक परिस्थिति को जान सकें, भूत खण्ड आप लिखिये। वर्तमान तथा भविष्य खण्ड मैं पूरा करूंगा। इधर मैंने भूत खण्ड पूरा किया परन्तु वे अनवकाश के कारण वर्तमान खण्ड को प्रारम्भ भी नहीं कर सके बाद में उन्होंने मुझे लिखा कि आपही इस कार्य को पूरा कीजिये और साथही विषयों की सूची बनाकर भेज दी तदनुसार कार्य मुझे ही करना पड़ा, वर्तमान पुस्तक के निमित्त उक्त पण्डितजी अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशकजीने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये भी इसे प्रकाशित करने का कष्ट उठाया है अतएव वे भी धन्यवाद के योग्य हैं।

विनीत :—

गुणभद्र जैन

श्रीमान् दानवीर श्रीमंत सेठ लखमीचंदजी, भेलसा

आपने लाखों रुपया विद्या-दान में देकर जैन समाज का

महान् उपकार किया है।

श्रीमान्, दानवीर, श्रीमंत सेठ

लक्ष्मीचंद जी

भेलसा निवासी

के

कर कमलों में

सादर

समर्पित ।

—•—

हे मान्यवर साहित्य सेवा आपकी यह देख के,
इस निज कृती के योग्य सम्प्रति आप को ही लेख के ।
करता समर्पित कर सरोजा में सरल यह भारती,
जो रूढ़ियों से अन्ध-भक्तों को जगत में वारती ॥

विषय सूची

अतीतखंड

वर्तमान खंड

भविष्य खंड

जैन-भारती

मंगलाचरण ।

कार्यके आरम्भमें भगवानकी जय बोलिये,
अन्तःकरणके दृढ़ कपाटोंको सहज ही खोलिये ।
प्रत्येक हृदयोंमें सतत जगदीश ही रहने लगें,
उनके लिये सद्भक्तिकी नदियां सरस बहने लगें।

शास्त्र

जिस सांद्रतमपर सूर्यशशिकी भी नहीं चलती मती,
हे शारदे ! पलमात्रमें तू ही उसे संहारती ।
जिनराज-निर्मल-मृदुसरोवरकी अलौकिक पद्मिनी,
होता न किसका चित्तहर्षित देख तव शोभा घनी

गुरु

जो साधु सदुपदेश रूपी मेघ बरसाते यहां,
जो भव्य रूपी चातकोंको तुष्ट करते हैं यहां ।

ज्ञान, तप, संयम, नियम जिनको सुहृद् सुखकार है,
उन साधुओंकी वन्दना करता जगत शतवार है।

प्रस्तावना

होंगे सजग सबही मनुज पढ़कर हमारी भारती,
पाषाण भी होगा द्रवित सुनकर हमारी भारती।
सोये हुये निर्जीवसे उनको जगायेगी यही,
सन्मार्ग विमुखोंको सदा पथमें लगायेगी यही।
जो सड़ रहे हैं खेदसे आलस्यकी ही गोदमें,
पढ़कर इसे वे नर सदा हंसते फिरेंगे मोदमें।
होगा इसीसे ज्ञात सब क्या २ हमारा होगया ?
सुविशाल इस भण्डारमेंसे रत्न क्या २ खो गया।
यह काल वर्तन शील है यों फिर न बदलेगा किसे ?
पर कालको देता बदल जो 'वीर' कहते हैं उसे।
नित दैवको ही दोष देना कायरोंका काम है,
यों शूल बोनेसे कभी उगता न सुन्दर आम है।
रविके निकलते ही मनोहर फैलता सुप्रभात है,
छिपता प्रतापी सूर्य जब होती भयंकर रात है।
हैं आज जो धनवान वे धनवान नित रहते नहीं,
जो रंक हैं वे सर्वदा ही रंक तो रहते नहीं।

है ठीक ऐसी ही दशा संसारमें उत्थानकी,
प्रत्यक्षमें अवलोकते कितनी दशाएं भानुकी !
हे लेखनी ! लिख दे प्रथम कैसे सुखी थे हम सभी,
अवनतहुये संप्रति अधिक, अवशेष अवनति औरभी

जैनधर्मकी श्रेष्ठता ।

अनेकांत ।

संसारसे जिस धर्मने एकान्त वाद हटा दिया,
है वस्तुनित्य-अनित्य यह जगको प्रगटबतला दिया
अज्ञान होता दूर सब इस धर्मके ही नादसे,
जीवित सदासे धर्म यह संसारमें स्याद्वादसे ।
बहु धर्मवाली वस्तु जिससे काम हो वह मुख्य है,
हम जैनियोंका तो सदा स्वाद्वाद सुन्दर तत्त्व है ।
बस, एक मानवमें सदा पुत्रत्व है, पितृत्व है,
जिस काल जिससे काम हो रखता वही प्रमुखत्व है ।

अहिंसा ।

सबही अहिंसा धर्मको कल्याणकारी मानते,
लेकिन न उसके गूढ़ तत्त्वोंको कभी पहिचानते।
जैसा अहिंसा धर्मका लक्षण कहा इस धर्ममें,
वैसा अलौकिक लेख क्या, मिलता किसीके कर्ममें ?
यह धर्मके भी नामपर आज्ञा न देता घातकी,
वधसे दुराशा मात्र है सर्वत्र अपने शात[1] की।
होते न हर्षित देवता भी जीव-जीवन त्यागसे,
वे तो मुदित होते सदा, बहु भक्तिगुण अनुरागसे।

समानता।

नित शक्ति सत्ताकी अपेक्षा सर्व जीव समान हैं,
निज आवरणको दूरकर होते मनुज भगवान् हैं।
सर्वज्ञ होनेकी सभीके अन्तरंगमें शक्ति है,
अतिही कठिनतासे सदा वह शक्ति होती व्यक्ति है

सार्व धर्म।

इस धर्मको तिर्यंच तक भी पाल सकते सर्वदा,
सच पूछिये यह एकही जगमें सभीकी सम्पदा।

---

१ कल्याण।

इस धर्मका धारक अधम मातंग१ भी पावन अहो,
अपवित्र, धर्म विमुख मनुजयोगी भलेही क्यों न हो।

निष्पक्षता।

सर्वज्ञ हो, निर्दोष हो, अविरुद्ध हो अनुपम गिरा,
ये तीन गुण जिसमें प्रगट वह देव है, नहिं दूसरा।
वह बुद्ध हो, श्रीकृष्ण हो या शम्भु हो श्रीराम हो,
बस भेदभाव विना उसेकर जोड़ नित्य प्रणाम हो।
सर्वोच्च हैं सिद्धान्त सब निष्पक्षताकी दृष्टिमें,
इतिहासके पन्ने उलटिये आप इसकी पुष्टिमें।
यह हो चुका है सिद्ध जगमें जैन धर्म अनादि है,
स्वीकार करते श्रेष्ठता जग२ को न वाद विवाद है।

---

१ सम्यग्दर्शन सम्पन्नमपि, मातङ्ग देहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्म, गूढ़ागांरान्तरोजसम्।
(श्रीसमन्तभद्राचार्य)

२ भारतके प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान श्रीबालगंगाधर तिलककी सम्मति (देखो केसरी पत्र ता० १३ दिसम्बर १९०४)

"ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानोंसे जाना जाता है कि जैन धर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है। सुतरां इस विषयमें इतिहासके दृढ़ सबूत हैं और निदान ईस्वी सन्से ५२६ वर्ष पहलेका तो जैन धर्म सिद्ध है ही" "महावीर स्वामी जैन

जिन ।

मद,मोह,शोक,क्षुधा,तृषा इत्यादि जिनमें है नहीं,
सर्वज्ञ राग द्वेष वर्जित,सर्व शास्ता 'जिन' वही।
दिखतीं चराचर वस्तुएं जिनके अलौकिक ज्ञानमें,
रहते सुरासुर मग्न नित उनके सुखद गुणगानमें।

धर्म ।

जो प्राणियोंका दूर कर दुःख,सौख्य देता है अहा,

धर्मको पुनः प्रकाशमें लाये इस वातको आज २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। वौद्ध धर्मकी स्थापनाके प्रथम जैन धर्मका प्रकाश फैल रहा था। यह वात विश्वास करने योग्य हैं। चौवीस तीर्थंकरोंमें महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे, इससे भी जैन धर्मकी प्राचीनता जानी जाती है। वौद्ध धर्म पीछेसे हुआ यह वात निश्चित है।

(Mr. T. W. Rhys Davids) मि० टि० डव्ल्यू रहिस डेविड सा० ने (Encyclopaedia Brittanica Vol XXIX नामकी पुस्तकमें लिखा है, "यह वात अव निश्चय है कि जैनमत बौद्धमतसे निःसन्देह वहुत पुराना है और वुद्धके समकालीन महावीर अर्थात् वर्द्धमान द्वारा पुनः सजीवित हुआ है। और यह वात भी भले प्रकार निश्चय है कि जैन मतके मन्तव्य वहुत जरूरी और बौद्ध मतके मन्तव्योंसे विलकुल विरुद्ध हैं। ये दोनों मत न. कि प्रथमहीसे स्वाधीन हैं वल्कि एक दूसरेसे विलकुल निराले हैं।

सत् विज्ञ पुरुषोंने सुहृद् वर 'धर्म'१ उसकोही कहा
दृग२ ज्ञान शुभ चारित्रका समुदाय ही सद्धर्म है,
है मोक्षका पथ भी यही इसमें भरा वह मर्म है।

जैन पूर्वज।

प्राचीन पुरुषोंके गुणोंको कौन कह सकता यहां?
सम्पूर्ण सागर नीर यों घट मध्य रह सकता कहां?
है जगत अब भी ऋणी उनके विपुल उपकारका,
उनने पढ़ा था पाठ नित उपकारका उपकारका।
वे विश्व सेवाके लिये प्रस्तुत सदा रहते रहे,
पर हित अनेकों कष्ट वे आनन्दसे सहते रहे।
मरना भवनमें कायरों सम अति भयङ्कर पाप था,
बनमें समरमें प्राण तजते कुछ न उनको ताप था।
वे रिक्त कर आते यहां, पर रिक्त कर जाते न थे,
सत्कार्य करनेमें कभी वे पूर्वज कायर न थे।
जबतक यहां जीते रहे अद्भुत उन्हें कीर्ति मिली,

---

१ संसार दुःखतः सत्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे।
(स्वामी समंतभद्र)

२ सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
(रत्नकरण्ड)

पश्चात् उनको स्वर्गमें देवेशकी भूति[1] मिली।
आलस्यमें जीवन बिताना भूलकर भाया नहीं,
संसारका दुर्भाव उनके चित्तमें आया नहीं।
उनके सरल व्यवहारमें लवलेश भी माया नहीं,
निज सत्य ही जगमें रहे चाहे रहे काया नहीं।
आहार करके मिष्ट, चादर तानकर सोते न थे,
वे एक क्षण भी व्यर्थमें अपना कभी खोते न थे।
वे सह न सकते थे जगतमें धर्मके अपमानको,
शुभकार्य हित वे तुच्छ गिनते थे सदा निज प्राणको
उन पूर्व पुरुषोंसे सदा माता कहाई सुतवती,
बस, लोकके कल्याणमें तत्पर रही उनकी मती।
वे विश्वके सेवक रहे, पर विश्व प्रभु था मानता,
कोई न था ऐसा मनुज उनको न जो पहिचानता।
अपकारियोंका भी अहो! करते प्रथम उपकार थे,
निज शत्रुके भी दुःखको करते मुदित संहार थे।
लड़ते रहे मध्याह्नमें वे तो कठिन संग्राममें,
मिलते रहे संध्या समय सप्रेम रिपुसे धाममें।
था धैर्य उनको आपदामें अभ्युदयमें थी क्षमा,
यों देखकर भीषण समर उत्साह नहिं उनका कमा।

---

१ विभूति।

निःशंक अति निर्भीक होके परिषदोंमें बोलते,
यशके लिये उनके कभी भी मन सुमेरु न डोलते।
त्रैलोक्यकी पा सम्पदा अभिमान वे करते न थे,
यमराजसे भी धर्म हित वे स्वप्नमें डरते न थे।
जिस कामको वे ठान लेते पूर्ण करते थे उसे,
नहिं स्वप्नमें भी जानते थे पथ पतन कहते किसे?
आदर्श उनके काम थे जिससे अभीतक नाम है,
जीवित हमारा धर्म उनके कार्यका परिणाम है।
अन्यायकारी अंग भी अपना नहीं था प्रिय उन्हें,
निज पुत्रको भी दण्ड देना न्यायसे था प्रिय उन्हें।
निज धर्मपर बलिदानहोते थे अहो! हंसते हुये,
सब प्राणियोंको आत्मवत् ही मानते थे वे हिये।
ले के प्रतिज्ञा तोड़ना उनको कभी आता न था,
उनके विपुल औदार्यका कोई पता पाता न था।
संसारमें रहते हुये वे भोगियोंमें श्रेष्ठ थे,
परमार्थमें रहते हुये वे योगियोंमें जेष्ठ थे।
गृह शूर बन करके प्रथम तप शूर बनते थे वही,
सहते उपद्रव थे मुदित विचलित न होते थे कहीं।
दिविलोक१ में उनके गुणोंके गीत सुर गाते रहे,

---

१ स्वर्ग।

प्रत्येक कामोंमें विजय पुरुषार्थसे पाते रहे।
अभिमान तज करके हुये अमरेन्द्र उनके दास थे,
संसारके सद्गुण सभी रहते उन्हींके पास थे।
लक्ष्मी सदा उनके भवन पानी अहो! भरती रही,
जिह्वाग्रमें जग भारती आवास नित करती रही।
उन पूर्वजोंके सामने मनकी व्यथा मरती रही,
अवलोक उनके तेजको यों आपदा डरती रही।

भोगभूमि

अहा! एक दिन मृगराज थे निज क्रूरता छोड़े हुये,
वे भी हमारे कृत्य से सम्बन्ध थे जोड़े हुये।
शूली न थी,फांसी न थी,नहिं मर्त्य कारागार१ थे,
बस! दंड दोषीके लिये हा! मा! तथा धिक्कार थे।
जो सुख न था दिविलोकमें वह सौख्य था भूपर हमें,
नमते रहे सुर प्रेमसे सिर, स्वर्गसे आकर हमें।
सुर लोकके सुरतरु हमारे हेत धरणीमें रहे,
अभिलाष अपनी पूर्ण हम उनसे सदा करते रहे।
चिन्ता न थी,दुख,शोक,क्रोध.विरोध भी रंचक न था
आनन्दमें सब लीन थे यमराजका भी भय न था।

---

१ जेल।

संसारमें ही देव दुर्लभ सौख्य उनको प्राप्त थे,
इस लोकके उत्कृष्ट सुखसे चित्त उनके व्याप्त थे।

प्रभाव।

अवलोक करके शांति मुद्रा वैर तजते थे सभी,
लड़ता न था उनके निकट अहिसे नकुल लवलेश भी
मार्जार करता था किलोलें हर्षसे ही श्वानसे,
पशु देखते थे सौम्य आनन सर्वदा अति ध्यानसे।
वनके हरिण मनमें अहो! वे स्थाणुकीही भ्रांतिसे,
तनकी खुजाते खाज थे उनसे रगड़कर शांतिसे।
सिंहनी-शावक अहा! गौ-क्षीर पीता था यहां,
गौ-वत्स निर्भय सिंहनीका क्षीर पीता था यहां।
केकी पगोंके पास ही निःशंक विषधर डोलते,
वे भूल करके भी कभी उनसे न कुछ थे बोलते।
आश्चर्य जग भरको हुआ उनकी अलौकिक शक्तिसे,
करते रहे गुणगान सविनय विश्वजन बहु भक्तिसे

आदर्श पुरुष।

आदर्श हों दो चार तो उनको गिनायें हम यहां,
आकाशके तारे अहो! किस विधि गिनायें हमयहां
आश्चर्यकारी लोकको उत्कृष्ट उनके कृत्य थे,

क्षमता विपुल समता दयासे युक्त उनके चित्त थे।
दानी नहीं श्रेयांस१ सा इस भव्य भूतलपर हुआ,
ज्ञानी कहो भरतेश२ सा कब अन्य इस भूपर हुआ
देखो, दशानन३ और वाली४से यहां वलवान थे,
थे पार्थ५से रणवीर भट, जिनके भयंकर वाणथे।

---

१ कर्मभूमिकी आदिमें श्रेयान्स महाराज दान-तीर्थके प्रवर्तक हुए हैं। इन्होंने भगवान आदिनाथको इक्षुरसका दान दिया था। दान थोड़ा था परन्तु प्रगाढ़ भक्तिसे दिया गया था। जिससे देवोंने पंचाश्चर्य किये थे।

२ चक्रवर्ती भरत त्रैलोक्य पति भगवान आदिनाथके पुत्र थे। इन्हें सभी सुख सुलभ थे। राज्य करते हुये महाराज भरत सदैव आत्म कल्याणपर विशेष लक्ष्य रखते थे। वे सांसारिक सुखोंमें आसक्त नहीं थे। इनको दीक्षा लेते ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था।

३ दशानन लङ्काका शक्तिशाली अधिपति था। उसने अपने पराक्रमसे इन्द्रको (रावणके समयका पराक्रमी विद्याधर) जीत लिया था। वड़े २ शूरवीर इसका नाम सुनकर कांप उठते थे। इसने अपनी शक्तिसे पर्वतराज कैलाशको भी हिला दिया था।

४ वालिदेव किस्किन्धा नगरके अधिपति थे। इन्हें संसारसे वैराग्य हो गया। ये अपने छोटे भाई सुग्रीवको राज्य देकर तपस्या करने लगे। एक दिन वालि देव कैलाशगिरिपर ध्यानारूढ़ थे। रावण कहीं भ्रमणार्थ जा रहा था, उसका विमान वालिदेव मुनिराज

सुकुमाल[1]से सुकुमारसे थी एकदिन शोभित मही,
पर्यङ्कको तज भूलकर भूपर दिया पग भी नहीं।
जब वे तपोवनमें गये पगसे रुधिर धारा बही,
निश्चल रहे निज ध्यानमें तन गीदड़ी खाती रही।

के ऊपर आके अटक गया जिससे लंकेश बहुत क्रोधित हुआ। "मैं इस बालिके साथ २ पर्वतको उखाड़ करके समुद्रमें फेंक दूंगा।" इत्यादि कहता हुआ पर्वतको हिलाने लगा। बालिदेव निस्पृही थे, उन्हें अपनी कुछ भी चिन्ता नहीं थी। "इस पर्वतपर अनेक प्राचीन चैत्यालय हैं वे सब नष्ट हो जायंगे तथा अन्य कितने ही मुनियोंका नाश होगा" यही सोचकर उन्होंने अपने पगका अंगूठा धीरेसे नीचेको दबाया जिससे रावणका गर्व खर्व हो गया। पश्चात् रावणने अपने दुष्कृत्यकी कड़ी आलोचना की, अपराध क्षमा कराया।

५ जग-प्रसिद्ध अर्जुनका वृत्तान्त किससे छिपा हुआ है? महाभारत के अन्दर शौर्य दिखला करके अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया था।

१ सुकुमाल बड़े ही सुकुमार थे, एक बार राजा इनको देखनेके लिये आया। उस समय इनकी माताने दोनोंकी आरती उतारी जिससे सुकुमालकी आंखोंमें अश्रु आ गये। राजाने सेठानीसे कहा, तुम्हारे पुत्रको यह कौनसी बीमारी है? सेठानी—राजन् यह कोई व्याधि नहीं है, किन्तु यह सदैव रत्नके प्रकाशको देखता है, आज दीपकके प्रकाशको देखकर इसकी आंखोंमें आंसू आ गये। सुकुमाल स्वभावसे ही धर्मात्मा था, सेठानीको सदा यह रहता था कि यह

जिन दीक्षा ले लेवे, अतएव अपने घर मुनियोंका आना भी वन्द कर दिया था। सुकुमाल वत्तीस स्त्रियोंके साथ वत्तीस खण्डवाले भवनमें अपने सुदिन विताने लगे। दैव योगसे इनके महलके पीछे वाले मन्दिरमें कोई मुनि चातुर्मास करनेके लिये ठहरे। एक समय मुनिराज त्रिलोक प्रज्ञप्तिका पाठ कर रहे थे। और उसकी आवाज सुकुमालको प्रगट सुनाई पड़ रही थी। उसके सुननेसे सुकुमालको जाति स्मरण हुआ तथा तत्काल वैराग्य रसमें लीन हो गया। वाहर आनेका कोई उपाय न देखकर उसने खिड़की (गवाक्ष) मेंसे कपड़ों की रस्सी वनाकर लटकाई और उसके सहारे मुनिके पास आके दीक्षा ले ली। मुनिने कहा कि तुम्हारी आयुके तीन दिन अवशेष हैं। सुकुमार सुकुमाल मुनि तप करने वनमें जा रहे थे उस समय उनके पगोंसे रक्तकी धारा वह निकली थी, सुमन सुकोमल गात्र सुकुमालको इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं थी। वे गहन वनमें शान्तमनसे तपस्या करने लगे। अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इतनेमें ही एक शृगालनी रुधिर धाराको चाटती २ वच्चों सहित मुनिराजके निकट आ पहुंची। उनको देख करके शृगालनीको वहुत कोप उत्पन्न हुआ। उसने मुनिका हाथ खाना प्रारम्भ किया तथा वच्चोंने पग खाना शुरु किया तीन दिनतक वह गीदड़ी उनके शरीरको वड़ी ही निर्दयतासे खाती रही। इतनी आपदामें भी मुनिराज सुकुमाल पर्वतराजसम अकम्प थे, उन्होंने इस दुखको दुखही नहीं माना, ज्यों ज्यों गीदड़ी उनको खाती गई त्यों त्यों वे आत्म ध्यानमें अधिक लवलीन होते गये। अंतमें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुए।

श्रीपार्श्व१ प्रभुपर दैत्यने कितना उपद्रव था किया,
साक्षात् हा ! उसने प्रलयका दृश्य था दिखला दिया
नाचीं पिशाचनी भीम वदना मेघसे ओले पड़े,
सहते हुये उपसर्ग सब कनकाद्रि२वत् प्रभु थे खड़े।
यों देख जीवक३ को विपिनमें बोलती विद्याधरी,
'पाणिग्रहण मेरा करो मैं हूँ अलौकिक सुन्दरी'।
उस काल क्या उत्तर दिया पाठक ! उसे सुन लीजिये
मैं तो तुम्हारा बन्धु सम भगिनी न इच्छा कीजिये

---

१ यद्गर्जदूर्जितघनौघ मदभ्रभीमं भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोर धारम्। दैत्येन मुक्तमथदुस्तरवारिदध्रे, तेनैव तस्य जिनदुस्तर-वारिकृत्यम्॥ १॥

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड।
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः॥
प्रेतव्रजः प्रतिभवन्तमपीरितो यः।
सोऽस्या भवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः॥२॥
(श्रीकल्याण मन्दिर स्तोत्र)

२. सुमेरु पर्वत।

३ जीवन्धर कुमार क्षत्रिय पुत्र थे। एक वैश्यके यहां पालन पोषण हुआ था। कुमार बाल्यकालसे ही अत्यंत तेजस्वी थे। विद्याभ्यास पूर्ण होनेपर गुरुने इनसे कहा "तुम क्षत्रिय वीर हो, तुम्हारे पिताको मार करके काष्ठांगारने राज्य ले लिया है।" यह

अपने पिताके हेत देखो भीष्म[१] ने त्यागा सभी,
क्या दूसरा दुःसाध्य ऐसा कार्यकर सकता कभी ?
उनसा न कोई ब्रह्मचारी आज आता दृष्टिमें,
यह देह तो नश्वर सदा गुण गूंजते हैं सृष्टिमें।

सुनकर इनके शरीरमें आगसी लग गई. ये तत्कालही उसे मारनेको प्रस्तुत हुये, किन्तु गुरुने ऐसा करनेसे रोका। तुम अभी बालक हो तुम्हारे पास साधन नहीं हैं जिससे कि तुम उससे अभी युद्ध करो। धैर्य रखो। एक वर्ष बाद तुम उससे अवश्य राज्य लेनेमें समर्थ होगे। कुमार घर आ गये स्वयम्वरमें इन्होंने गंधर्वदत्ताको जीत लिया, लुटेरोंको वशमें किया, तथा एक दिन काष्ठांगारका हाथी छूट गया था उसको वशमें किया। इन सब कार्योंने काष्ठांगारकी क्रोधानलमें घीका काम दिया। उसने कुमारको पकड़ बुलाया। शूलीपर रखनेकी आज्ञा दी, शूलीपरसे एक देव उठा ले गया। पश्चात् कुमार भ्रमण करते करते एक सघन वनमें आये। थकावट दूर करनेके लिये एक वृक्षके तले बैठ गये। वहांका एक विद्याधर दम्पति ठहरा हुआ था विद्याधर पानी लेने गया कि विद्याधरी इनके पास आके प्रेमकी प्रार्थना करने लगी। कुमारने कहा कि तू मेरी बहिन समान है। इनका विशेष हाल जाननेके लिये क्षत्रचूड़ामणि या जीवंधर चम्पू देखना चाहिये।

१ भीष्म-प्रतिज्ञा जग जाहिर है, अपने पिताके लिये ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे थे।

अकलंक युतनिकलंकने व्रत बाल्यजीवनमें लिया,
रहते हुये निज प्राण उसका अंततक पालन किया।
करने लगे उनके पिता तैयारियां उत्साहसे,
बोले तभी वे वीर हमको काम क्या इस व्याहसे?
देखो! पिता सर्वत्रही अज्ञान तम अति छा रहा,
प्राचीन अपना धर्म दिन २ हा! रसातल जारहा।
जीवन बिताऊंगा पिता निज धर्मके उद्धारमें,
उन्नति न करते धर्मकी वे भार हैं संसारमें।
अतएव अपने पुत्र ये धर्मार्थ अब अर्पण करो,
होगा हमारा क्या अकेले यह न तुम चिंता करो।
निकलंक तो हंसते हुये बलिदान सहसा होगये,
अकलंक अपने ज्ञानसे अज्ञान तमको धो गये।
पाठक! यहां वलिदानकी कैसी भयंकर थी प्रथा,
सब जान लीजे आप उसको पर पुराणोंसे तथा।
श्रीवीर प्रभु होते न जो हिंसा कभी रुकती नहीं,
अपने हिताहितको कभी भी यह मही लखती नहीं।
आदेश पालक वीर थे संसारमें मगधेश[1] से,
पाके पिता आज्ञा कठिन सविनय गये जो देशसे
श्रीराम लक्ष्मणसा किसीमें प्रेम क्या होगा हरे?

---

[1] श्रेणिक।

छह मासतक निज बन्धु शव ले प्रेमसे व्याकुलफिरे
मातंग१ भी देखो अहिंसा धर्मका धारी हुआ,
धनदेवसा क्या अन्य कोई सत्य संचारी हुआ ?
वह वारिषेण स्तुत्य है अस्तेय व्रत धारी सदा,
कितना सुदृढ़ था शीलपर वह मीनकेतन२ सर्वदा।
जयने३ किया परिमाण जो उसको कभी छोड़ा नहीं,
अघसे कभी सम्बन्ध उसने स्वप्नमें जोड़ा नहीं।
अपनी परीक्षाके समय वे सर्वथा निश्चल रहे,
उपसर्ग जो आ आ पड़े आनन्दसे सहते रहे।
उनके चरणमें शीश अपना इन्द्रको झुकना पड़ा,
अन्याय और अनीतिको सर्वत्र ही रुकना पड़ा।
जिस ओर उत्तेजितचले उस ओर सारा जगचला,
आदर्श नर संसारका करते रहे निशिदिन भला।
श्री बाहुबलसे एक दिन उत्तम तपस्वी थे यहां,
श्रीकृष्ण या बलदेवसे उत्तम यशस्वी थे यहां।
उनके गुणोंको आज भी गाता सकल संसार है,
गुणगानका प्रत्येक नरको सर्वथा अधिकार है।

---

१ चांडाल।

२ प्रद्युम्नकुमार।

३ जयकुमार।

जैन स्त्रियां।

थे देव यदि इस देशके तो नारियां थीं देवियां,
यों कर न सकतीं थीं उन्हें पथसे चलित आपत्तियां
अबला कहाके शील-रक्षणमें सदा सबला रहीं,
विद्या तथा चातुर्यतामें वे सदा प्रबला रहीं।
प्राणेशको तज अन्यको चाहा न उनने स्वप्नमें,
तंजना प्रभूको दुःखमें चाहा न उनने स्वप्नमें।
रहकर स्वपतिके साथमें दुःखको न दुःख माना कभी,
प्राणेश सेवामें सदा ही धर्म निज जाना सभी।
मृदुदर्भ शैय्या थी उन्हें पति साथमें सुखकर बड़ी,
उनके विरहमें पुष्प-शैय्या थी धरासे भी कड़ी।
अतिशय निपुण थीं देवियां अपने भवनके काममें,
होती न थी किंचित् कलह उनसे कभी भी धाममें
पति सेव कहते हैं किसे बतला दिया इस विश्वको,
सद्तेज अपने शीलका जतला दिया इस विश्वको
पति देव सेवामें प्रथम मैना सती आदर्श है,
पावन हुआ सन्नारियोंसे भव्य भारतवर्ष है।
अतिवज्र हृदयोंको पलटनेकी उन्हींमें शक्ति थी,
निज इष्टदेवोंके प्रति उनकी सततही भक्ति थी।
उन देवियोंसे एकदिन सुन्दर-सदन शुभस्वर्ग था,

उनकी कृपासेही सहज़ सधता यहां अपवर्ग था।
मगधाधिपति किसकी कृपासे बौद्धसे जैनी वना,
आता न वह सन्मार्गपर होती नहीं यदि चेलना१।

---

१ चेलना महाराज श्रेणिककी अर्द्धाङ्गिनी थी, महाराज बौद्ध धर्मका पालक था और महारानी जैन धर्मकी सच्ची उपासिका थी। महाराज रानीको निजरूप वनाना चाहते थे और रानी महाराजको जैन वनाना चाहती थी। दोनोंमें ही खूब वाद विवाद होता था महाराजको उसकी प्रबल युक्तियोंसे निरुत्तर हो जाना पड़ता था। एक दिन महाराजके प्रासादमें बौद्ध-गुरु आये, वे महारानी चेलना को जैन धर्मके विरुद्ध उपदेश देने लगे। जैन-गुरु नंगे रहते हैं उन्हें एक अक्षरका भी ज्ञान नहीं हैं। हम लोग सर्वज्ञ हैं अतएव कलसे हमीको मानना चाहिये। रानीने कहा, ठीक कलसे मैं आपको ही अपना गुरु मानूंगी। दूसरे दिन वे साधु फिर आये, आहार करनेके लिये राजमहलमें वैठे कि इतनेमें ही रानीने दासी द्वारा उनका एक जूता मंगाकर और बारीक पीस करके भोजनमें परोस दिया। साधु लोग नया मिष्ठान्न समझ कर बड़े आनन्दसे उसे खा गये। पश्चात् वे लोग मठमें जाने लगे, अपना एक २ जूता न देखकर बड़े ही हैरान हुये। तव रानीने कहा "आप लोग तो कल सर्वज्ञ बनते थे इस समय तुम्हारी सर्वज्ञता कहां चली गयी है? वस्तु तुम्हारे पास ही है। वे लज्जित साधु चुपचाप चले गये।

पर इस अपमानसे श्रेणिकको बड़ा ही दुःख हुआ वह जैन

सहती रही द्रुपदात्मजा दुःख नाथ संग वनके सभी,
तजकर उन्हें चाहा न उसने पितृ-कुलका सुख कभी
आजन्मके भी शीलव्रतको पाल सकती थीं यहां,
ब्राह्मी१ तथा सुन्दरि सदृश थीं पूज्य बालायें यहां

गुरुओंके अपमानका अवसर देखने लगा। दैववशात् एक दिन शिकार करते हुये राजाने दिगम्बर जैन मुनिको देखा। उसे देखकर क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। अपने ५०० शिकारी कुत्ते उसने मुनि के ऊपर छोड़ दिये, किन्तु वे श्वान मुनिके पास जाते ही बिलकुल शान्त हो गये। महाराजका क्रोध और भी उत्तेजित हुआ उन्होंने मरा हुआ सांप मुनिके गलेमें डाल दिया। सातवें नरककी स्थिति-का बंध किया।

तीन दिन बाद अपनी पाप कथा रानीको सुनाई। रानीने राजाको खूब ही धिक्कारा! रातमें ही राजा रानी मुनिके पास गये, मुनिको निष्कम्प देख करके राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। प्रातः-काल होते ही मुनिने दोनोंको धर्मवृद्धि दी। जिससे राजाके मनमें मुनिके प्रति अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

चेलनाके ही प्रभावसे मुनिराजके दर्शन हुये। विशेष हाल जाननेके लिये श्रेणिक चरित या महारानी चेलना देखना चाहिये।

—लेखक।

१ ब्राह्मी और सुंदरी भगवान आदिनाथकी पुत्रियां थीं भगवानने स्वयं इन्हें विद्याभ्यास कराया था। दोनों ही बाल-ब्रह्मचारिणी रहीं।

भगवानने सप्रेम ही उनको पढ़ाया था अहो !
हा! क्या अशिक्षित नारियोंसे भी भला होता कहो
जीवनमयी! अर्द्धांगिनी! हृदयेश्वरी! प्राण-प्रिये!
ये कोषके मृदुशब्द सबही थे सदा उनके लिये।
हम मानवोंके भी हृदयमें नारियोंका मान था,
हर एक बातोंमें हमें उनका बड़ा ही ध्यान था।
गंधर्वदत्ता, अंजना, श्रीदेवकी, सुरमंजरी,
सीता, सुभद्रा, उत्तरा, नीली तथा मन्दोदरी।
राजुल, शिवा श्री चन्दना कुन्ती तथा शीलावती,
विजया, सती, दमयन्ति ब्राह्मी, सुन्दरी, पद्मावती।
पतिदेवके आगे उन्हें प्रिय पुत्रकी चिन्ता[१] न थी.
आपत्ति भयकर शीलसे अपकार कुछ करती न थी
हा! हा! सतीका एक बालक अग्निमें था गिर पड़ा.
वह अग्नि चंदन सम हुई आश्चर्य यह जगको बड़ा।

---

१ एक रात्रिको वेष बदलकर धारा नगरी (राजधानी) घूमते हुये राजा भोजने देखा—एक ब्राह्मणी अपने पतिकी सेवामें उपस्थित थी। अनायास उसका अल्प वयस्क बालक खेलते २ हवन करनेके अग्निकुण्डमें गिर पड़ा, ब्राह्मणी यह देखकर भी प्रसन्न चित्तसे पति की सेवामें तत्पर रही। उसके इस पतिव्रत धर्मके प्रभावसे बालकको अग्निने कुछ भी हानि नहीं पहुंचायी।

सीता।

अपनी परीक्षाके समय जनकात्मजा बोली यही,
मनसे वचनसे कायसे परको कभी चाहा नहीं।
यदि हे अनल! मिथ्या वचन हों भस्म कर देना मुझे,
कैसी सदा मैं विश्वमें हूं यह बताना है तुझे?
प्रिय शील सन्मुख देवियोंको राज्य वैभव तुच्छ था,
पतिप्राण था पतिज्ञान था, पति ध्यान था सर्वोच्चथा।
शिक्षित अनेकों देवियां होतीं रहीं जिस देशमें,
बस टिक सकी होगी कहां अज्ञानता उस देशमें।

इस अद्भुत और अपूर्व चमत्कारको देखकर राजा भोजने दूसरे दिन अपने सभाके पण्डितोंसे यह प्रश्न (समस्यारूप) किया कि—"हुताशनश्चन्दन पंकशीतलः"

कवि शिरोमणि कालीदासने उत्तर दिया—

सुतं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके, नबोधयामास पतिं पतिव्रता।
पतिव्रताशापभयेनपीडितो, हुताशनश्चन्दन पङ्कशीतलः—

(काव्य प्रभाकर)

हमारा श्रद्धान।

होवे अनल शीतल कहीं योगी चलित हों ध्यानसे,
होते न थे विचलित कभी हम धर्मके श्रद्धानसे।

सर्वज्ञका पथ विश्वमें मिथ्या कभी होता नहीं,
ऐसा सुदृढ़ श्रद्धान क्या उन पूर्वजोंको था नहीं?
हम अन्ध श्रद्धालु न थे नित मानते थे बस वही,
जिस बातको सप्रेम सादर सत्य कहती थी मही।
श्रद्धानमें ही देव है इस बातका विश्वास था,
सत्यार्थके विश्वाससे पाता न कोई त्रास था।

हमारी निःकांक्षा।

करके अलौकिक कार्य हम करते न थे फल चाहना,
रहती रही जागृत हृदयमें धर्मकी सद्भावना।
निज कार्यका परिणाम जगमें सर्वदा मिलता स्वयम्,
अवलोककर आदित्यको पंकज-विपिन खिलता न किम्

निर्विचिकित्सा।

देख कर अपवित्रताको हम न करते थे घृणा,
अपने हृदयमें सोचते थे, गात्र यह किससे बना?
तज न सकती वस्तु अपने भावको किञ्चित् कहीं,
यों ग्लानिकरना वस्तुसे सार्थक हमारा है नहीं।

अमूढ़ दृष्टि।

नमते न थे सहसा कभी भी हम किसीको भेष[1] से,

---

[1] स्व० कविवर पण्डित वनारसीदासजी परीक्षा प्रधानी जीव

मिथ्यात्वको कब मानते थे हम किसी भी क्लेशसे
कब पूजते थे हम कुदेवोंको कुगुरुओंको अहा,
सबके हृदयमें सत्यका ही ध्यान रहता था महा।

उपगूहन।

निज धर्मकी निन्दा हमारे कान सुनते थे नहीं,
उत्तर हमीं देना कभी भी चूक सकते थे नहीं।
करना प्रगट अवगुण किसीका धर्म करता है मने,
करते रहो उपकार जगमें आपसे जितना बने।

थे। एक दिन दो मुनि मन्दिरके दालानमें एक झरोखे (गवाक्ष) के निकट बैठे हुये थे। कविवर उस बगीचे, और झरोखेके समीप खड़े हो गये। जब किसी मुनिकी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अंगुली दिखाके उसे चिढ़ाते थे। वे भक्तजनोंकी ओर मुंह करके बोले, देखो तो बागमें कोई कूकर ऊधम मचा रहा है? लोगोंने देखकर मुनियोंसे कहा, महाराज! वहां और तो कोई नहीं था, हमारे यहांके सुप्रतिष्ठित पण्डित बनारसीदासजी थे, यह जानकर कि यह कोई विद्वान परीक्षक था, मुनियोंको चिन्ता हुई, और दो चार दिन रहकर वे अन्यत्र विहार कर गये। कहते हैं कि कविवर परीक्षा कर चुकनेपर फिर मुनियोंके दर्शनोंको नहीं गये।

(बनारसी विलास)

स्थितिकरण।

मद, मोह, तृष्णावश मनुज जो धर्मसे गिरते हुये,
हमही उन्हें सन्मार्गमें स्थित पुनः करते हुये।
स्थिति करणही देश अथवा धर्मका प्रिय अङ्ग है,
इस अङ्ग बिन सर्वत्र ही प्रिय-धर्म होता भङ्ग है।

वात्सल्य।

निज बंधुओंपर ही हमारा निष्कपट अति प्यार था,
सुख दुःखमें निज धर्मियोंकाही बड़ा आधार था।
उनसे सतत मिलकर हमें आनन्द होता था महा,
संसारमें साधर्मियोंका प्रेम मिलता है कहां?

प्रभावना।

जिन धर्मकी महिमा प्रगट हम शक्तिभर करते रहे,
बहु गूढ़ उसके तत्व जगके सामने धरते रहे।
आडम्बरोंसे धर्मकी होती न बढ़वारी कभी,
इस बातको अच्छी तरहसे जानते थे हम सभी।

हमारी विद्या।

माता सदा वह शत्रु है वैरी जनक जगमें वही,

सन्तानको जो प्रेम वश विद्या पढ़ाते हैं नहीं।
यह ध्यानमें रखकर हमीं विद्या पढ़ाते थे यहां,
हमसे प्रबल विद्वान थे इस विश्वमें बोलो कहां?
विद्या हमारी थी सभीको बोध देनेके लिये,
इससे सतत उपकार हमने विश्वके कितने किये।
पढ़कर इसे आजीविकाका लक्ष्य रखते थे नहीं,
आशा भरी मृदु दृष्टिसे परमुख न लखते थे कहीं
गुरु[1] भूल भी बतला सकें इतना यहांपर ज्ञान था,
छह मासतक शास्त्रार्थकर किसने बढ़ाया मान था?
भगवान तककी भी उपाधि विश्वमें नित प्राप्त थी,
जिह्वाग्रमें यह शारदा रहती सदा ही व्याप्त थी।

श्रुतज्ञान।

है ज्ञात इस संसारको कैसे प्रथम ज्ञानी हुये,
हम एकसे बढ़कर यहांपर नित्य विज्ञानी हुये।
श्रुत केवली सम्पूर्ण विद्या पारगामी थे यहां,
सद्बोध जो करुणासदन सर्वज्ञ देते थे यहां।

---

१ अकलंक स्वामीने विद्यार्थी अवस्थामें बौद्ध-गुरुकी पुस्तक ठीक की थी।

थी चन्द्र१, रवि प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति यहां,
थी द्वीप-सागर२ अतिगहन व्याख्या सुप्रज्ञप्ति यहां
माया३ गता जल४ थलगता इत्यादि विद्यायें रहीं,
दुर्भाग्यसे अब ग्रन्थ उनके प्राप्त हा! होते नहीं।
वे गूढ़ मनकी बात सब सद् भांति बतलाते रहे,
वे भूत और भविष्यको प्रत्यक्ष जतलाते रहे।
सब वस्तुयें दिखतीं रहीं उनके अलौकिक ज्ञानमें,
अब आ न सकता ध्यान भी उनका किसीके ध्यानमें

हमारे शास्त्र।

सबही विषयके शास्त्र थे शोभित यहां भंडारमें,
नहिं अन्य उनकी जोड़के थे ग्रन्थ इस संसारमें।
निज २ विषयमें एकसे बढ़कर यहांपर ग्रन्थ थे,
पढ़कर उन्हें मानव सदाहो देखते निज पन्थ थे।

---

१ चन्द्र प्रज्ञप्तिमें चन्द्रमा सम्बन्धी सूर्य प्रज्ञप्तिमें सूर्य सम्बन्धी विमान, पूर्ण गृहण, अर्ध गृहणका वर्णन है।

२ द्वीप सागर प्रज्ञप्तिमें असंख्यात द्वीप और समुद्रोंका वर्णन है।

३ माया गतामें इन्द्रजाल सम्बन्धी वर्णन है।

४ जल गतामें जलगमन आदिका वर्णन है।

(गोमट्टसार जीवकाण्ड)
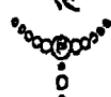
भगवानकी अनुपस्थितिमें वे हमें भगवान् थे,
उनके मननसेही बने हम एक दिन विद्वान थे।
सब प्राणियोंका नेत्र अद्भुत शास्त्र कहलाता सही,
सम्पूर्ण बातों को सतत प्रत्यक्ष बतलाता वही।

सूत्र।

छोटे हमारे सूत्र हैं भावार्थ अतिशय ही भरा,
यों कर न सकता अर्थ जिसका स्वप्नमें भी दूसरा।
तत्वार्थ सूत्र विलोक लीजे भाष्य हैं उसपर बड़े,
अधुना न मिलते पूर्ण हा! हा!! वंदतालोंमें पड़े।
तत्वार्थ रच आचार्यने उपकार जगका कर दिया,
निज दक्षतासे ही सहज घट मध्य सागर भरदिया।
निज-धर्मके सिद्धान्त यों संक्षेपमें सब आ गये,
बनते रहे जिसपर यहांपर शास्त्र नित्य नये नये।

न्याय।

'गंधहस्ति'१ जैसे भाष्य निज सत्ता यहां रखते रहे,
जिससे सदा हम जीव पुद्गल भेदको लखतेरहे।
श्रीश्लोकवार्तिक ग्रन्थकी किससे छिपीप्राचीनता?
क्या 'न्यायकुमुदोदय' तथा 'मार्तंड २' कीविस्तीर्णता?

---

१ गंधहस्ति महाभाष्य। २ प्रमेय-कमल-मार्तण्ड।

होते न यदि ये ग्रन्थ तो रहते सभी अज्ञानमें,
इस जीवका आता न लक्षण भी किसीके ध्यानमें।
षड् द्रव्य जगमें कौनसे हम जान सकते थे नहीं,
इस जीवका अस्तित्व मानव मान सकते थे नहीं

अध्यात्म ग्रन्थ।

अध्यात्म विद्याके विपुल सद् ग्रन्थ जितने हैं यहां,
अहा! अन्यलोगोंके यहांपर ग्रन्थ उतने हैं कहां?
जबतक न अपने रूपमें तल्लीन नर होता नहीं,
तबतक न वह लवलेश भी हा! कर्मरज धोता नहीं
अध्यात्म विद्याका प्रचारक ग्रन्थ 'प्रवचनसार' है,
बतला दिया उसने सकलमद, मोहही संसार है।
करके जगतके कृत्य नर पड़ता स्वयं जंजालमें,
हा! मानता है देहको अपना यहां त्रयकालमें।

आचार-ग्रन्थ।

विस्तीर्ण इस साहित्यमें नहिं धर्म-ग्रन्थोंकी कमी,
कल्याणहित शुभ शास्त्र कितने रच गये हैं संयमी,
'अनगार धर्मामृत' तथा 'सागार धर्मामृत' अहो!
'श्रीभगवती आराधना'से ग्रन्थ हैं किसमें कहो?

नीति ग्रन्थ।

एक दिन थे नीतिके अति ग्रन्थ इस साहित्यमें,
अवलोकके निजको मुदित होते रहे हम चित्तमें।
सुन्दर कथाके साथ किसमें नीति बतलाई गई,
बस! बात यह जीवक१-चरितमें सर्वथा पाई गई।
श्रीसोमदेवाचार्य कृत है 'नीति वाक्यामृत' बड़ा,
हर एक जिसका श्लोक सुन्दर नीति-रत्नोंसे जड़ा।
वह 'रत्नमाला'२ विश्वमें मणिमाल जा सकती कही,
यों हम न अपनाते उसे अपना रही सारी मही।

व्याकरण।

यह व्याकरण ही लोकमें सर्वत्र भाषा प्राण है,
रहता सभीका सर्वदा उसपर बड़ा ही ध्यान है।
क्या 'शाकटायन' व्याकरण बोलो यहाँ सामान्य है,
देखो हमारा व्याकरण ही पाणिनीको मान्य है।
'जैनेन्द्र'३ अतिशय लोकमें साहित्यकी सम्पत्ति है,

---

१ क्षत्र-चूड़ामणि।

२ इसका पुरा नाम प्रश्नोत्तर रत्नमाला है। इसका अनुवाद तिब्बतीय तथा अन्य भाषाओंमें भी हो चुका है।

३ पूरा नाम जैनेन्द्र व्याकरण है।

यह व्याकरण अविचल सदा भाषा-भवनकी भित्ति है
श्रीहेमचन्द्राचार्य[1]ने रचकर सरल शुभ व्याकरण,
अपनी कृतिसे विज्ञपुरुषोंका किया था मन हरण।

कोष* ।

उस 'विश्वलोचन' कोष जैसे कोष थे बहुएकदिन,
सब शब्द मिलते थे सहज जिसमें कठिनसेकठिन।
क्या हेमकोष समान जगमें कोष भी होगा कहीं,
हम मानवोंका एक पल भी कोष बिन चलता नहीं।

गणित-ग्रन्थ ।

करणानुयोगोंके हमारे ग्रन्थ गणित भरे पड़े,
आते नहीं हैं बुद्धितकमें भी नियम अतिशय कड़े।
अद्भुत गणितको देखलो नहिं अङ्कका परिफाव है,
साहित्यका संसारमें सुन्दर गणित भी प्राण है।
देखो अलौकिक यह गणित[2] है दो विभागोंमें बंटा,

---

[1] ये आचार्य श्वेताम्बर जैन थे।

* कोषश्चैव महीपानां, कोषश्च विदुषामपि,
उपयोगो महानेष, क्लेश स्तेन बिना भवेत्।

[2] गणितका विस्तृत वर्णन देखो गोमट्टसारमें।

विस्मित सहजही अन्य होते देखकर जिसकी छटा।
सारे मिलाकर भेद हों इक्कीस संख्या मानके,
पल्यादि आठ विभाग हैं विख्यात उपमा मानके।
देखो गणितका ग्रन्थ[1] है आचार्य श्रीमहावीरकृत,
जो कर रहा है ग्रन्थकर्त्ताकी प्रगट महिमा अमित।
अधिकार उसके सर्व बातोंसे अहो! पूरे भरे,
अतएव हो गुणके विवश करते प्रशंसा दूसरे।

पुराण ग्रन्थ।

हैं पद्म, आदिपुराण अब भी पूज्य ऋषियोंके लिखे,
निज पूर्वजोंके कृत्य जिससे विश्वको सम्मुख दिखे।
जो बोध और समाधिके अक्षय अमित भंडार हैं,
श्रोतागणोंको सर्वदा जो सौख्यके दातार हैं।
होते नहीं यदि ग्रन्थ ये हम पापसे डरते नहीं,
हम भूलकर संसारमें शुभ कार्य भी करते नहीं।
दृष्टान्त[2]से ही मानवोंकी प्रस्फुटित होती मती,
शुभ कर्मका परिणाम शुभ है पापका फल दुर्गती।

---

१ श्रीमहावीराचार्य रचित ग्रन्थोंमेंसे एक "गणितसारसंग्रह मद्रास सरकारकी आज्ञासे छप चुका है।

२ दृष्टान्तेहि स्फुटामतिः।

चिकित्सा शास्त्र ।

श्रीपूज्यपादाचार्य[1] कृत अनुपम चिकित्सा शास्त्र हैं,
वाग्भट्ट जैसे ग्रन्थ धरणीमें अधिक विख्यात हैं।
करते रहे सब ही चिकित्सा शास्त्रके अनुसार ही,
छोटे, बड़े सब रोग मिटते थे सदा सोचो यही।
है वैद्यगाहा[2] ग्रन्थ अद्भुत और औषध-कल्प[3] है,
हममें चिकित्सा शास्त्रका साहित्य भी कब अल्प है?
उस काल इस संसारमें थी कौन सी ऐसी व्यथा,
जिसपर हमारी औषधी जाती कदाचित् हो वृथा।

प्राकृत भाषा ।

कितने यहांपर ग्रन्थ इसके मोद-प्रद उपलब्ध हैं,
अवलोक जिसकी रम्य रचना विज्ञ होते स्तब्ध हैं।
गोमट्टसार त्रिलोकसारादिक उसीके रत्न हैं,
उन पूर्वजोंके ही सदा ये सर्व योग्य प्रयत्न हैं।

---

१ रस तन्त्र; वैद्यकसार संग्रह और वैद्यकयोग संग्रह ये तीन ग्रन्थ उक्त आचार्यके बनाये हुये हैं।

२ यह ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ है।

३ इन्द्रनन्दिभट्टारक कृत।

काव्य।

सारे हमारे काव्य हैं परिपूर्ण बहु-पाण्डित्यसे,
सौन्दर्य मंडित रस अलंकृत पद प्रबल लालित्यसे।
जिसके पठनसे नर-हृदय होता रहा हर्षित सदा,
है काव्य अतिशय मोद-प्रद सबको जगतमें सर्वदा।
सचमुच हमारे काव्य जग-विश्रुत अपूर्व अपार हैं,
नहिं अन्य काव्योंकी तरह शृङ्गारके आगार हैं।
इन जैन काव्योंमें सदा नव रस यथास्थल हैं अहा!
पर अन्तमें प्रत्येकके वैराग्यका सोता बहा।
नहिं काव्य हैं उत्कृष्ट जगमें मन लुभानेके लिये,
हैं किन्तु वे तो पुण्यकी महिमा बतानेके लिये।
अवज्ञात होती है उसे इनमें विशेष विशेषता,
निष्पक्ष हो साहित्यकी ही दृष्टिसे जो देखता।
है गद्यकी रचना अलौकिक विश्वमें कादम्बरी,
वह गद्य चिन्तामणि विपुल पांडित्यसे पूरी भरी।
क्या है न चन्द्रप्रभ-चरित रघुवंशकी ही जोड़का,
है ग्रन्थ अन्योंमें कहां पुरुदेव चम्पू जोड़का।
उस अभ्युदयके सामने क्या वस्तु काव्य किरात है?
पद रम्यता, उपमा तथा गुरुता विपुल विख्यात है।

चम्पू सरीखे काव्य तो दो चार भी होंगे नहीं,
श्रृङ्गार रस भरपूर जो थोड़े बहुत मिलते कहीं।
पांडित्य-दर्शक देखलो वह काव्य द्विःसन्धान है,
जिसको सकल साहित्यमें नित प्राप्त उच्च स्थान है।
प्रत्येक छन्दोंके अहो! चौबीस होते अर्थ हैं,
ऐसे गहन सद् ग्रन्थ हममें ही सदैव समर्थ हैं।

चित्र विद्या।

हम चित्र विद्यामें परम नैपुण्य रखते थे यहां,
निज लेखनीके ही चलाते चित्र लखते थे यहां।
अंगुष्ठको अवलोक कर सर्वाङ्ग अङ्कित कर सके,
अपनी कालसे विश्व भरका मन विमोहित कर सके।
देखो यशोधर ग्रन्थमें मन मुग्धकारी चित्र हैं,
अङ्कत हमारे ही किये मिलते यहां पर चित्र हैं।
अवलोकके आंखें उन्हें चाहें पुनः अवलोकना,
उस चित्रकारीकी न कोई कर सकेगा कल्पना।
रचते न नारद रुक्मिणीका चित्र यदि जगमें कहीं,
संग्राममें शिशुपालका संहार भी होता नहीं।
विरही प्रियाका चित्रका लखकर धैर्य नित धरते रहे,
हम चित्र अनुपम विश्वमें अङ्कित सदा करते रहे।

कवि।

कैसी अलौकिक शक्तिके धारी यहां कवि थे कहो!
कविता-कमलिनीके लिये वे दूसरे रवि थे अहो।
उनके मुखोंमें सर्वदा ही भारतीका वास था,
निज कार्य साधनके लिये अतिशय हृदय उल्लास था

श्रीजिनसेनाचार्य।

होते रहे हममें कवी भगवान् श्रीजिनसेनसे,
अविकार, आशाहीन अति गम्भीर भारी घेनसे१।
सम्पूर्ण-विद्वत्ता-प्रदर्शक आज आदिपुराण२ है,
उनकी कृतीका लोकमें सर्वत्र ही सम्मान है।

श्रीरविषेणाचार्य।

कवि सूर्य श्रीरविषेणने लिखकर कथा श्रीरामकी,
मानो लगा दी छाप सबके चित्तपर निज नामकी।
बतला दिया, सुग्रीवको बन्दर न था, कपिवंश था,
लंकेश राक्षस था नहीं, विख्यात राक्षस वंश था।
अकलङ्क, आशाधर, तथा हरिश्चन्द्र चन्द्र समान थे,
अवलोक कर चातुर्यता होते चकित विद्वान थे।

---

१ घेन-समुद्र। २ "पुराणेष्वादिपुराणः।"

कहिये धनंजयसे महाकवि आपने देखे कहीं ?
क्या वादिराज समान जगमें दूसरे होंगे कहीं ?
वादीभसिंह समान तो थोड़े हुये कवि केशरी,
वह क्षत्र चूड़ामणि जिन्होंकी पूर्ण नीतीसे भरी।
श्रीसोमदेवाचार्य जगमें पूर्णतः विद्वान थे,
जिनका विपक्षी वृन्द भी करते सदा गुणगान थे।

श्रीसमन्तभद्राचार्य।

जिनका हृदय कोमल सदा ही भद्र भावोंसे भरा,
जिनने वचन रूपी किरणसे मोह मिथ्या तमहरा।
जो भव्य कुमुदोंके लिये थे चन्द्रमा संसारमें,
भद्रेश वे आधार हों संसार पारावारमें।
जो थे जगतमें कवि, गमक, वादी तथा वाग्मीपरम्,
संसार भरके कवि उन्हें सप्रेम नमते हैं प्रथम।
स्वामी-पदोंको आज भी सादर सकल भू पूजती,
अतिरम्य पुष्प समान उनकी कीर्ति जगमें गूंजती।

श्रीसिद्धसेन दिवाकर।

जिनके हृदयमें हर्षसे सादर विचरती शारदा,
हैं कांपते मिथ्यात्ववादी पत्रवत् जिनसे सदा।

जो न्याय-नभके हैं दिवाकर ज्ञानके आगार हैं,
वे सिद्धसेन यतीन्द्र ही अशरण शरण आधार हैं।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य।

जो म्लान हृदयोंको खिलानेके लिये रवितुल्य थे,
अज्ञान गिरीको चूर करनेके लिये पवितुल्य थे।
अध्यात्म रस पीयूषको जो सर्वथा पीते रहे,
ऐहिक विषय दुर्वासनासे जो सदा रीते रहे।

श्रीगुणभद्राचार्य।

आचार्य वर सद्धर्मके सच भूतिमन्त शरीर थे,
तत्वज्ञ थे अतिशय जगतमें धीर थे गंभीर थे।
उत्तरपुराण अहो! नमूना है परम गुरु-भक्तिका,
है और परिचायक जगतको पूर्णकविता-शक्तिका।
आत्मानुशासन लोकमें है आपकी भौतिक कृति,
उपकार हित उद्यत रही नित आपकी सुन्दर मति।
निज दासपर करके कृपा वह रम्य-मूर्ति दिखाइये,
अब अन्य नहिं तो नामके नाते हमें अपनाइये।

ग्रन्थकारोंकी नम्रता।

रचते रहे सद्ग्रन्थ अनुपम वे अधिक उत्साहसे,
व्याकुल न होते थे हृदय उनके प्रशंसा चाहसे।

निज ग्रन्थके प्रारम्भमें वे वाक्य लिखते थे यही,
बस शब्द एकत्रित किये कुछ भी किया हमने नहीं।

स्तोत्र।

कल्याण मन्दिरकी कहो महिमा छिपी क्या आपसे ?
प्रगटित हुई थी पार्श्व प्रतिमा स्तोत्र सत्य प्रतापसे ।
भक्तामरादिक तेजको सब लोग अबतक जानते,
हैं मंत्र इसमें बात यह विद्वान सब ही मानते ।
कैसे स्वयंभू स्तोत्रका गुणगान नर मुखसे करे ?
उसकी कथा इस विश्वमें आश्चर्यको पैदा करे ।
वे स्तोत्र क्या बस मंत्र थे निज कार्य होता था सभी,
देते न थे जिसके पठनसे त्रास व्यन्तर भी कभी।
श्रीवादिराज प्रणीत 'एकीभाव' भक्तीमय अहा !
आचार्यका जिससे कलेवर कोढ़ सब जाता रहा ।
यदि भक्ति भावोंसे करें हम देवकी आराधना,
होती सहज ही शीघ्र पूरी चित्तकी शुभकामना ।

स्तुतियें।

संकट हरण विनती लबालब भक्ति भावोंसे भरी,
मानों मनोहर भूषणोंसे युक्त ही हो सुन्दरी ।

वह ही दुखित इस चित्तको देती अधिकतर शांति है,
होते प्रगट भगवान मनमें दूर होती भ्रान्ति है।

वीर-पुरुष।

निज शक्तिसे संसारपर अधिकार जो करते रहे,
अवलोक जिनकी वक्र भ्रकुटी शत्रु सब डरते रहे।
ललकारसे मानी नृपति होते रहे वशमें सभी,
लेना न पड़ती थी उन्हें तलवार भी करमें कभी।
उनके मनोहर चक्षुओंमें तेज इतना था भरा,
अभिमानसे ऊंचा न करता था कभी सिर दूसरा।
वन-केहरीसे सैकड़ों मृग भाग जाते हैं यथा,
ओह ! अद्भुत वीरसे सब शत्रु डरते थे तथा।
संसारमें वे वीरवर यमराजसे डरते न थे,
निज शक्तिका वे स्वप्नमें अभिमानपर करते न थे।
लाखों भटोंका था अहो! बल एक अनुपमवीरमें,
होते न थे व्याकुल कभी भी वीर अतिशय पीरमें।
थे कोटि-भट श्रीपालसे इस रम्य धरणीपर अहो!
जो तिरगये निज शक्तिसे भीषण-दुखद सागर अहो
करना करीन्द्रोंको स्ववश यह तो सदाका खेल था,
करके कठिन संग्राम भी उनके न मनमें मैल था।

पन्नग तथा मृगराजसे भी वे कभी डरते न थे।
अपने हृदयमें व्यर्थकी शंका कभी करते न थे।
दैत्येन्द्रसे करते समर होते न थे भयवान वे,
करते रहे नित दीन दुखियोंका अधिकतर त्राण वे।
उनके अलौकिक पूर्ण बलका कौन पाता था पता?
यह देश पाकर वीर नरको भाग्य था निज मानता।
लंकेशने कैलाशको कैसे अहो! विचलित किया,?
सद्‌वीरता कहते किसे यह भीमने बतला दिया।
श्रीनेमि प्रभुकी कृष्ण भी अंगुलि न टेढ़ी कर सके,
अभिमन्युके विकराल सरसे द्रोण कैसे थे छके!
लव और कुशकी देखकर रणमें प्रबल यों वीरता,
क्या तुच्छ लगती थी नहीं सौमित्रको निज शूरता।
जिस युद्धमें वे नर गये उनको जय-श्रीने वरा,
उनकी अलौकिक वीरतापर मुग्ध होता दूसरा।
रणमें मरेंगे पायेंगे स्वर्गीय सुख सिद्धान्त था,
बस! वीर भावोंसे भरा रहता सदा ही स्वान्त था।
उनके परम वीरत्वमें किंचित् नहीं थी क्रूरता,
संग्राममें थी शत्रुता पश्चात् थी प्रिय-मित्रता।
छलसे किसीको जीतना उनने कभी जाना नहीं,
विध्वंस करके न्यायका, संग्रामको ठाना नहीं।

जिसको दिया आश्रय प्रथम वे अन्त तक देते रहे,
अपने मनुजके तुल्य ही सुधि-बुधिमुदित लेते रहे।
होने न पावे कष्ट कुछ इसका बड़ा ही ध्यान था,
निज आश्रितोंके भी लिये उनके हृदयमें मान था।
भगते हुओंपर भूल करके वार वे करते न थे.
वीरत्वके अभिमानमें पर-सम्पदा हरते न थे।
सम्पूर्ण पृथिवी पर सदा निशंक निज शासन किया,
दी सम्पदा नित रंकको विद्वानको आसन दिया।
सुखशान्ति पूर्वक नीतिसे जीवन बिताते थे यहां,
तिर्यञ्च तक भी कष्ट किंचित् तो न पाते थे यहां।
सर्वत्र समता राज्य था, अघ, भय, अनय सब दूर थे,
यम, नियम द्वारा हां सभी दुष्कर्म करते दूर थे।

आचार्य।

आचार्य कैसे थे हमारे ध्यानसे सुन लीजिये,
फिर पूज्य पुरुषों का सदा गुणगान सादर कीजिये।
थी एक दिन शोभित मही आचार्य नेमीचन्द्रसे,
सिद्धान्तके ज्ञाता विकट आचार्य अमृतचन्द्रसे।
उनकी तपस्यामें सदा आश्चर्यकारी शक्ति थी,
इह लोक विषयों में कभी उनकी नहीं आशक्ति थी।

कर दी शिला कंचनमयी निज पगतलेकी धूलसे,
आचार्य श्रीशुभचन्द्रने चाहा न रसको भूलसे।
कल्याण प्रद संसारको उनके अलौकिक कार्य थे,
सिद्धान्त औ साहित्यके सम्पूर्णतः आचार्य थे।
क्या मंत्रमें, क्या तंत्रमें, क्या छन्दमें संगीतमें,
क्या काव्यमें, इतिहासमें, क्या चित्र विद्या, नीतिमें?
तर्क, ज्योतिष विश्वके थे शास्त्र, हृदयागारमें,
उनसा न था विद्वान कोई एक दिन संसारमें।
उनके विपुल पांडित्यकी नर कौन कह सकता कथा,
वे शास्त्र विद्या पारगामी विश्वमें थे सर्वथा।
अतिशय निपुण थे सर्वदा वैद्यक तथा आख्यानमें,
अमृत बरसता था सहज उनके मृदुल व्याख्यानमें।
वे वायु सम निःसंग थे सागर-सदृश गम्भीर थे,
शशितुल्य चित्त विशुद्ध थे गिरिराज सम वे धीर थे।
पाषाण भी मृदु-मूर्ति लखकर स्निग्ध होता था अहो,
निर्जीव होता मुग्ध जब स्तब्ध मानव क्यों न हो?
उनके विरोधी भी अहो! उसकाल कहते थे यही,
इनसा हुआ होगा न साधू और अब होगा नहीं।
अपने विरोधी प्रति यहां कितना सरल व्यवहार है,
ये मर्त्य हैं या देव हैं, थल स्वर्ग या संसार है।

दीक्षा तथा शिक्षा हमें देते सदा आचार्य थे,
वे विश्व भरके सद्गुणों से सर्वथा ही आर्य थे।
दुखसे बचाते थे हमें उपदेश दे आदेशसे,
कहते न थे निष्ठुर वचन वे तो किसीसे द्वेषसे।
वे मोहके वशवर्त्ति हो करते न थे लौकिक क्रिया,
सन्मार्ग-पर्वतसे कभी भी च्युत न होता था हिया।
सेवा न अपनी दूसरों से वे कराना चाहते,
वे शत्रुकी निन्दा न करते, मित्रको न सराहते।
है वृत्ति-भिक्षाकी तथापि वे न करते याचना,
देवेशके साम्राज्यकी भी है न मनमें कामना।
विधि सहित यदि लोकने मुनिराज पड़गाहन किया,
तृष्णा-रहित होके खड़े आहार किंचित् ले लिया।
वह भी लिया निज हाथमें यदि दोष कुछ आया कहीं,
उपवास करनेसे हृदय उनका न अकुलाया कहीं।

उपाध्याय।

पढ़ना, पढ़ाना शिष्यको ही मुख्य जिनका काम है,
निर्ग्रन्थ जो मुनितुल्य हैं पाठक उन्हींका नाम है।
थे पूर्वमें ऐसे यहां जो चित्त संशय हर सकें,
जो शास्त्र, तर्क, प्रमाणसे मुख बन्द परका कर सकें।

स्याद्वादकी वे मूर्ति थे प्रतिमा गहन सिद्धान्तकी,
जिनके उदयसे शीघ्र हटती थी घटा एकान्तकी।
व्याख्यान करते तत्त्वका मानों सुमन भूपर गिरें,
जिनके वचन सुनकर प्रबल मिथ्यात्वियों के मन फिरें

मुनिराज।

तिलतुष बराबर भी परिग्रह नित्य उनको पाप था,
सहते उपद्रव वे कठिन मनमें न पर सन्ताप था।
संसार भोगों से कभी उनको न कोई काम था,
प्रिय-राज मन्दिर त्यागकर बनको बनाया धाम था।
निस्पृह अहो! मुनिराज वे उपकार करते थे सदा,
रिपु, मित्र, कंचन, कांचमें समभाव रखते थे सदा।
पीड़ा न हो मुझसे किसीको ध्यान रहता था यही,
अतएव उनके आज तक पद पूजती सारी मही।
जिनके हृदय जागृत रही कल्याणकी ही भावना,
इन व्यर्थके ऐहिक सुखोंकी थी न उनको चाहना।
अपने सदृश ही प्राणियों के प्राण वे थे मानते,
उपकार करते लोकका उपकार अपना मानते।
हे पाठको! जो सौख्य था उनको जगतके त्यागमें,
उस सौख्यका लक्षांश भी सुख था न जग-अनुरागमें

थे राज-मन्दिर कष्ट-प्रद कानन सुहाता था उन्हें,
यों पूर्वका अनुभुक्त सुख नहिं याद आता था उन्हें।
रहती जहांपर व्यग्रता सुख टिक न सकता नामको,
दुख मानते थे सर्वदा वे विश्वके आरामको।
सुन्दर, असुन्दर भावको तो दूरसे ही तज दिया,
शम, दम, नियम इत्यादिसे परिपूर्ण रहता था हिया।
जिस कामके आधीन हैं संसारके मानव सभी,
उस कामका मुनिराजपर चलता न था वल भी कभी।
पर वस्तुओं से राग अथवा द्वेष उनको था नहीं,
वे शत्रुके संयोगसे व्याकुल न होते थे कहीं।
मृगराजके सन्मुख ऋषी निर्भीक रहते थे खड़े,
अतिशान्त मुद्रा देखकर मृगराज उनके पग पड़े।
यों चित्त-चंड-विहङ्गका करते सदा अवरोध जो,
देते जगत भरको मुदित निष्काम सुखप्रद बोध जो।
ध्यानाग्निसे ही कर्म वनको दग्ध करना है जिन्हें,
अपना प्रवल संसारका सन्ताप हरना है जिन्हें।
जो साधु सदुपदेश रूपी मेघ वरसाते यहां,
जो भव्य रूपी चातकोंको नित छकाते हैं यहां।
विंध्याद्रि[१] जिनका है नगर, पर्वत-गुफा प्रासाद[२] है,

---

१ विंध्याचल पर्वत। २ महल।

पाषाण ही पर्यंक१ है आती न घरकी याद है ।
है चन्द्रमा दीपक मृदुल करुणा हृदयकी कामिनी,
कल्याण वे करते रहैं सर्वत्रा ही संयम-धनी ।
मृदु-तूल शैयापर प्रथम जिनको बिनोला था गड़ा,
कर्कश धरापर हर्षसे उनको अहो ! सोना पड़ा ।
यह चांचला लक्ष्मी तजीपर ज्ञान लक्ष्मीको नहीं,
बस, आत्म साधन इष्ट है मन-अन्य अभिलाषा नहीं

मूर्तिपूजन ।

जबतक हमारे सामने प्रभु मूर्ति मृदु होगी नहीं,
तबतक हृदयमें भक्ति भी उत्पन्न यों होगी नहीं ।
प्रभु तुल्य बननेके लिये करते मनुज आराधना,
आदर्श बिन मनमें कहो उत्पन्न हो क्या भावना ?
हम भक्तजन प्रभु मूर्तिको नहिं मानते पाषाण हैं,
हां, मानकर भगवान उनका नित्य करते ध्यान हैं ।
जैसे नृपतिकी मूर्तिका करना अवज्ञा पाप है,
प्रतिमा अनादरसे पुरुष पाता अधिक सन्ताप हैं ।
सन्तान आदिक मांगना उससे निरर्थक है सदा,
देती नहीं निर्जीव प्रतिमा आपदा या सम्पदा ।

---

१ पलंग ।

साक्षात् ईश्वर भी हमें सुत पौत्र दे सकता नहीं,
निष्काम है वह तो सदा धन धान्य ले सकता नहीं।
उनके गुणों के रागसे परिणाम होते शुद्ध हैं,
फिर पाप होते दूर तब सब कार्य होते सिद्ध हैं।
यों निष्कपटकर भक्ति जो करते जगत सुख चाहना,
झट प्रतिफलित होती प्रभूकी भक्तिसे वह कामना।
प्रभु मूर्ति पूजाका यहां आदेश ऋषियों ने दिया,
सविनय सकल संसारने स्वीकार उसको था किया।
ज्यों चित्रसे होता हमें है ज्ञान उसकी मूर्तिका,
भगवान-प्रतिमासे हमें हो ज्ञान उनकी मूर्तिका।

वक्ता।

वक्ता जितेन्द्रिय थे यहां निर्दोष थी जिनकी गिरा,
श्रद्धान था प्रभु मार्गका उपदेश था अमृत भरा।
वे धीर थे, गंभीर थे, अत्यन्त प्रतिभा-वान थे,
वे सूर्यसे तेजस्वि थे गुणवान थे, विद्वान थे।
उनके हृदयमें थी दया, संयम, नियम थे पालते,
पाषाण हृदयों को अहो! वे फूलसा कर डालते।
आगम-सहित जलसे धुले उनके हृदय अतिस्वच्छ थे,
मानस सरोवरमें न उनके पाप रूपी मच्छ थे।

श्रोता।

विद्वान पुरुषोंका सदा करते रहे सत्कार वे,
निज शक्तिभर इस लोकका करते रहे उपकार वे।
जो कुछ सुना उसको मुदित हो कार्यमें परिणत किया,
निज धर्मके श्रद्धानसे आलिप्त था उनका हिया।

वैराग्य।

कृत्रिम न था वैराग्य, हम उसमें सदा ही लीन थे,
वैराग्य-वारिधिका हमें सब लोग कहते मीन थे।
उच्छिष्ट सम जिस वस्तुको हमने मुदित हो तज दिया,
उसके लिये फिर भूलकर व्याकुल न होता था हिया।
करते हुये गृहकार्य सब उनमें न मन आसक्त था,
पापाचरण अथवा कषायोंमें न कोई लिप्त था।
वे मानते थे विश्व सुख सब सान्त कर्माधीन है,
आत्मीक-सुख सर्वत्र ही अविचल परम स्वाधीन है
रहता हुआ जलमें अहो! निरपेक्ष पंकज है यथा,
अनपेक्ष इन संसार-कार्योंसे हमी तो थे तथा।
आलिप्त कीचड़से कनक ज्यों शुद्धता तजता नहीं,
ज्ञानी पुरुष तज शुद्धता त्यों मोहको भजता नहीं।
भगवान मनमें थी यही निर्जन-विपिन आगार हो,

सन्तोष धन हो सन्निकट प्रियमित्र सम संसार हो।
मनमें न हो दुर्वासना तनपर न तिलभर वस्त्र हो,
निर्भीक हो यह आत्मा करमें न कोई शस्त्र हो।

तपोवन।

योगीश्वरों के वाससे शोभित तपोवन थे यहां,
सब दुःखसे संतप्त मानव शान्ति पाते थे वहां।
अध्यात्म अमृतकी वहां धारा बरसती थी अहो,
सुन्दर तपोवनमें कहो फिर मुग्ध किसका मन न हो
निर्ग्रंथ ऋषियोंके तपोवन शांतिके शुभधाम थे,
संसार-त्यागी साधुवर वे सर्वदा निष्काम थे।
अमरेन्द्र-काननसे अधिक सुख शांति थी उद्यानमें,
था देखते बनता ऋषीश्वर लीन हों जब ध्यानमें।

अकृत्रिमता।

उन पूर्वजों के चित्त-मन्दिरमें न कृत्रिमता रही,
चिरकाल कृत्रिमता जगतमें क्या कहो टिकती कहीं
यों तज नहीं सकती कदाचित् वस्तु अपने धर्मको,
क्या सिंह,कहलाया गधा परिधान१ कर तच्चर्मको ?
उस चक्रवर्ती२ से कहा था दिव्य-देवों ने यही,

१ ओढ़ कर। २ चक्रवर्ती सनत्कुमार अत्यन्त सौन्दर्य-शाली थे।

स्वाभाविकी वह चारुता इन मंडनोंमें है नहीं।
अवलोकिये कोरी बनावट विश्वमें दो दिन रहे,
हा। तुच्छ सरिता ग्रीष्म ऋतुमें सर्वदा कैसे बहे?
वे पूर्व भूपति लोकमें सचमुच प्रजाके प्राण थे,
वे मानते निज प्रिय-प्रजाको सर्वदा सन्तान थे।
हरते न थे अपनी प्रजाका द्रव्य वे अन्यायसे,
मुख मोड़ सकते थे नहीं वे स्वप्नमें भी न्यायसे।
था सर्व भारतवर्ष सुन्दर सर्वदा अधिकारमें,
विख्यात थे अपने गुणोंसे वे नृपति संसारमें।
जिनकी मृदुल-यशवल्लरी इस विश्वमें थी छागई,
उन न्यायनिष्ठ नृपालगणसे वह महीपावन हुई।
जब चंद्रगुप्त महीपका था शान्तिप्रद शासन यहां,
जीवन बिताते थे सभी सुख शांतिसे अपना यहां।
करते रहे वे न्याय नित यों पोल कुछ चलती न थी,
हा। चापलूसीकी वहांपर दाल कुछ गलती न थी।
करते हुये शासन उन्हें निज आत्महितका ध्यान था,
है राज्य-क्षणभंगुर-सुखद इस बातका बहुज्ञान था।
अवलोकके अवसर अहो! वे छोड़ देते थे सभी,
फिर कामिनी या राज्यकी इच्छा न करते थे कभी।
श्रीभद्रबाहूके पदोंका चन्द्र कितना भक्त था?

जिनसेन गुरु-पद्-पंकजों में 'वर्ष'[1] मन अनुरक्त था
भद्रेशको शिवकोटिने क्या पूज्य निज माना नहीं ?
गुरुविन किसीने भी कभी सन्मार्ग क्या जाना कहीं ?
यों जो न विधवा द्रव्य[2] लेते थे कभी भंडारमें,
जो सम्पदा करते रहे व्यय धर्म, कर्म प्रचारमें।
दुर्व्यसन[3] प्रायः सभी ही राज्यमेंसे दूर थे,
उनके बृहद् साम्राज्यमें पापी न थे नहिं क्रूर थे।
उनने अहिंसा धर्मकी सर्वत्र फहरा दी ध्वजा,
पापी दुराचारी नराधम हिंसकोंको दी सजा।
संकट निवारणके लिये थीं दान शालायें[4] खुलीं,
शुभज्ञान वर्द्धन हेतु ही तो पाठशालायें खुलीं।

---

१ श्रीअमोघवर्ष।

२ कुमारपालने विधवाओंका द्रव्य लेना पाप समझा था।

३ दुर्व्यसन लगभग दूर ही हो गये थे।

४ गरीबोंका दुख दूर करनेके लिये कुमारपालने एक बड़ी भारी दानशाला खुलवाई थी जिसका प्रबन्धक सेठ नेमिनाथका सुपुत्र "अभयकुमार श्रीमाली" था। कुमारपाल बहुत ही स्वदार-सन्तोषी था इसलिये इसे परदार-सहोदर, शरणागत वज्रपंजर, जीव दाता आदि अनेक पदवियां प्राप्त हुई थीं।

शक्तिका उपयोग।

बल था हमारा दुर्बलोंकी दुःख रक्षाके लिये,
धन था हमारा दीन जनको दान देनेके लिये।
करना अनुग्रह भूलते थे हम न जीवों पर कभी,
सत्कार्य हित करते रहे तन, मन हमीं अर्पण सभी।
उन्मार्ग पोषणके लिये वक्तृत्व शक्ति थी नहीं,
उपकार करनेके लिये प्रभुकी न भक्ति की कहीं।
जिस भांति हमको भूल करके निज अनिष्ट न इष्ट था,
बस! आत्मवत् सिद्धान्त था देता न कोई कष्ट था।

हमारा सुख।

अवलोक करके सुख हमारा देव ललचाते रहे,
निज कार्य-पटुतासे जगतके सौख्य हम पाते रहे।
सब वस्तुयें मिलतीं रहीं, सुख-शान्ति पूर्ण सुभिक्ष था,
उस स्वर्गका ही दृश्य तो दिखता यहां प्रत्यक्ष था।

ग्रामीण-जीवन।

था कौन सा हमको न सुख पहले यहांपर ग्राममें,
निश्चिन्त नित आरामसे सोते न थे क्या धाममें?
बोया यहां जितना अहो! उससे अधिक पैदा हुआ
यों भूखसे व्याकुल कभी हां, बैलतक भी नहिं मुआ।
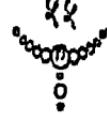
घी दूधकी उन रम्य ग्रामोंमें सदा नदियें बहीं,
जिसके निकट गायें न हों ऐसा न था कोई कहीं।
घृत दुग्ध मिलनेसे सभीके हृष्ट-पुष्ट शरीर थे,
कोई न असमयमें तनिक आंखों बहाते नीर थे।
उस काल इनपर साहुकारोंका न अत्याचार था,
सर्व-सुख सम्पन्न सुन्दर स्वर्ग सम संसार था।
वे धर्म-कृत्योंको सदा करते अहा! स्वयमेव थे,
नर रूपमें प्रगटित हुये मानों धरा पर देव थे।

नागरिक-जीवन।

प्रिय नागरिक जीवन हमारा सौख्यका आगार था,
आराममें रहते हुये सब पर हमें बहु प्यार था।
थे सहज ही प्राप्त निर्भय सौख्यके साधन उन्हें,
अत्यन्त प्रिय था सर्वदा ही ईश्वराराधन उन्हें।
आधुनिक सम उन पुरोंमें तो न अत्याचार था,
अनुदारता, मात्सर्य, नहिं द्वेष, दुख, व्यभिचार था।
फिरते न थे यों मार्गमें भी भीख भिक्षुक मांगते,
तसकरोंकी भीतिसे रहते न थे नर जागते।

चारित्र।

सच्चा हमारा त्याग था आदर्श सबकी दृष्टिमें,

पाते न थे उससे कभी हम कष्ट सारी सृष्टिमें ।
हिंसा तथा मिथ्या वचन अरु स्तेय तजना चाहिये,
व्यभिचारको तज वस्तुसे भी मोह तजना चाहिये।
उपदेश था आचार्योंका पालते इसको रहो,
रहते रहो चाहे जहांपर कष्ट फिर तुमको न हो ।
संसारमें ये पाप ही भीषण दुखोंके हेतु हैं,
पांचों महाव्रत, पार होनेके लिये दृढ़ सेतु हैं ।

रात्रि भोजन त्याग ।

हम मानते थे दोष अतिशय यामिनी-आहारमें,
जिससे विपुल विख्यात थे हम सर्वदा संसारमें ।
भोजन न करते रात्रिमें रखकर हजारों भी दिये,
जितने हमारे कार्य हैं सब ही प्रयोजनको लिये ।

जल गालना ।

लघुजीव रहते नीरमें सबका यही था मानना,
आलस्यको कर दूर इससे चाहिये जल छानना ।
मरते न कीड़े और अपना देह बचता रोगसे,
सब ही यहांपर नीरको तो छानते थे योगसे ।

मद्य, मांस, मधुका त्याग ।

छोड़ें न जबतक मद्य आमिष, निन्द्य मधुको सर्वथा,

तबतक हमारा लोकमें श्रावक कहाना था वृथा।
छोड़ा सकल संसार यदि इनको कहीं छोड़ा नहीं,
तोड़ा न तृष्णा जाल, नाता धर्मसे जोड़ा नहीं।

शुद्धि।

थी न कृत्रिम शुद्धि हममें पर अकृत्रिम शुद्धि थी,
जिससे बढ़ी नित लोककी विद्या तथा बल-बुद्धि थी।
इस लोकके अनुसार ही सबसे यहां व्यवहार था,
मैला भले ही गात्र हो पर शुद्ध हृदयागार था।
उपदेश देते थे यहां मुनिराज भी मातङ्गको,
धोते न थे लेकिन कभी रज-लिप्त अपने अङ्गको।
उन श्रेष्ठ पुरुषोंके सदा अन्तःकरण अति शुद्ध थे,
जग वस्तुओंमें वे कभी अनुकूल थे न विरुद्ध थे।

तीर्थ-क्षेत्र।

शुभ तीर्थकी कर वन्दना कृतकृत्य होते थे हमीं,
अपने हृदयका पाप-मल सम्पूर्ण धोते थे हमीं।
होते अलौकिक भाव थे उन तीर्थ क्षेत्रोंमें नये,
उनकी परम महिमा पुराणोंमें सकल ऋषि लिख गये।

श्रीशिखर सम्मेद।

महिमा विपुल धारक अलौकिक श्रीशिखर सम्मेद है,

सद्दर्शनों से शीघ्र ही मिटता हृदयका खेद है।
वह शैलपति सचमुच अहो! क्या शान्तिका आगार है?
या पूर्वजों की कीर्तिका अविचल-वृहद्-आधार है।
नित पूजने लायक हृदयसे शैलका पाषाण है,
क्या लोहको पारसमणी करती न हेय समान है।
पाया वहांसे पूज्य ऋषियों ने परम निर्वाणको,
आश्चर्य अपने साथ ही पावन किया सब स्थानको,

श्रीकैलाश।

श्रीआदि विभु निर्वाणभू विश्रुत विपुल कैलाश है,
स्वर्गीय शोभाका अहो! जो पूर्णतः आवास है।
बन दृश्य अति रमणीक जिसके, इन्द्रका मन लोभते,
ऐसे हमारे तीर्थ अनुपम लोक भरमें शोभते।

श्रीगिरनार।

श्रीनेमि प्रभु पद-स्पर्शसे पावन हुआ गिरनार है,
सविनय सतत उस भूमिको भी वन्दना शतवार है।
श्रीकृष्ण सुत प्रद्युम्न, शंभू, वीरवर अनिरुद्ध हैं,
इत्यादि अगणित मुनि वहांसे हो गये प्रभु सिद्ध हैं।

चम्पापुरी और पावापुरी।

हैं पुण्यदात्री नगरियां चम्पापुरी पावापुरी,

विध्वंस करके यत्र अघ शिव-कामिनी[1] प्रभुने वरी।
क्या न कहलायी जगतकी सुरपुरी चम्पापुरी,
किस बातमें यों कम रही थी पूर्वमें पावापुरी ?

श्रीबीनाजी अतिशयक्षेत्र।

श्रीक्षेत्र अतिशय रम्य है शुभ ग्राम बीना अतिमहा,
प्रति वर्ष मेला होत हैं, यात्री बहुत आते वहां।
प्राचीन मन्दिर तीन हैं अतिही विशाल सुहावने,
श्रीशांति प्रभुकी भव्य मूर्तिके दरश सुख पावने।

केशरियाजी।

मेवाड़ प्रान्तरगत विराजित श्रीकेशरिया क्षेत्र है,
श्रीआदि प्रभुकी भव्यमूर्ति दर्श सुखके हेतु हैं।
अखिल भारतवर्षमें यह क्षेत्र अति विख्यात है,
बतला रहे हैं लेख भी प्राची दिगंबर ख्यात है।

गृहस्थाश्रममें।

स्वाध्याय, पूजा, दान, तप, संयम गृहस्थी-कृत्य थे,
कर्तव्य अपना मानकर उनमें सभी अनुरक्त थे।
उपकारका जो पाठ हमने बाल्य-जीवनमें पढ़ा,

---

[1] चम्पापुरीसे वासुपूज्य, पावापुरीसे महावीर मोक्ष पधारे हैं।

चरितार्थ उसको प्रेमसे सम्प्रति हमें करना पड़ा।
है मोहका जबतक उदय चारित्र धर सकते नहीं,
पांचों अघोंका पूर्ण जबतक त्यागकर सकते नहीं।
तबतक सदा शुभकार्यमें जीवन विताना चाहिये,
माया तथा दुर्वासनासे मन हटाना चाहिये।
केवल विरक्तों से अकेले चल नहीं सकती मही,
यह सोचकर सम्पूर्ण जगके काम करते हैं गृही।
जिस वस्तुकी इच्छा हुई पुरुषार्थसे वह प्रासकी,
आराधना करते रहे सुख दुःखमें वे आसकी।
मर्मज्ञ थे, तत्त्वज्ञ थे, दानी तथा निष्पक्ष थे,
वे दुर्व्यसन त्यागी मुदित निजकार्यमें अतिदक्ष थे।
थे सत्यभाषी, वृद्धसेवी, धर्मसे अनुराग था,
मनसे वचनसे कायसे मिथ्यात्वका नित त्याग था।
सागार[१] उत्तम थे वही संसारके सद्गुण रहे,
अन्यार्थ[२] उनने हर्षसे आये हुये सुख दुख सहे।
निजगेहमें रहते हुए सुख था उन्हें दुख था नहीं,
सहधर्मिणी थी शिक्षिता आज्ञाविमुख सुत था नहीं
उत्पन्न नित करते रहे वे सद्गुणी सन्तानको,
फिर प्राप्त वे होते रहे निज आत्महित उत्थानको।

---

१ गृहस्थ। २ दूसरोंके लिये।

भिक्षुक सदनके द्वारसे यों रिक्त[1] जाता था नहीं,
पाता न था यदि द्रव्य तो आहार पाता था सही।

विश्व सेवा।

की विश्व-सेवा किन्तु इच्छाकी न प्रत्युपकारकी,
सबका सदा कहना रहा सेवा करो संसारकी।
इस विश्वसेवामें सतत स्वर्गीय-सुख आनन्द है,
सत्कार्य करनेके लिये संसार भर स्वच्छन्द है।
संसार-सेवासे सदा होता अधिक शीतल हिया,
करके सुसेवा लोककी शशिने वदन उज्वलकिया।
सेवा करोगे विश्वकी मेवा मिलेगी आपको,
जो दूर कर देगी सहजहीं चित्तके सन्तापको।

वीर शासनका वीर मंत्र।

श्रीवीर शासनके अलौकिक बोध-प्रद सद्मंत्रसे,
सक्षेम हम आते रहे यमराजके भी दन्तसे।
उसकी प्रखरतर ज्योतिसे पर्दा हटा अज्ञानका,
प्रगटित हुआ सबके हृदयमें सूर्य सम्यग्ज्ञानका।
है मंत्र शासनका यही, मत सत्यकी हत्या करो,
अपना हृदय पावन कभी मत दुष्ट भावोंसे भरो।

---

१ खाली।

निज बन्धुओं प्रति आपका जो प्रेम नहिं है सर्वथा,
जप,तप, नियम इत्यादि सारे आपके तब तो वृथा।
आत्मा अमर है, मृत्युका इस देहसे सम्बन्ध है,
सत्कार्य हित जो मौतसे डरता मनुज वह अंध है।
संसारके संग्राममें आती भयंकर आपदा,
समभावसे सहता उसे होता जयी वह सर्वदा।
माता तुम्हारे सत्य पथमें विघ्न यदि डाले कहीं,
बैठे हुये हों फाड़कर मुख व्याल यदि काले कहीं।
होवे पिता बाधक तुम्हारे लोकके शुभ पन्थमें,
होओ न विचलित तुम कभी विजयी बनोगे अन्तमें

उदारता

अपने सुकृत्योंसे जगत भरके नमूने हम बने,
उपकार और उदारतासे चित्त सबके थे सने।
यों स्वप्नमें भी दूसरोंसे की नहीं हमने घृणा,
निज शत्रुओंको मित्र सा अपना लिया अपना बना।

प्रेम।

यह बात जग विख्यात है रहती जहां पर एकता,
रहती वहांपर सम्पदा शुभशील और विवेकता।

जो बन्धुओंको देखकर करते कलह वे श्वान हैं,
वे सभ्य पुरुषोंमें कभी पाते नहीं सन्मान हैं।

समाज।

उस काल सर्व समाज जगके रूढ़ि बन्धन मुक्त थे,
करुणा तथा निष्पक्षतासे सर्वथा संयुक्त थे।
निज बन्धुओंके प्रति उन्हें मनमें न किंचित द्वेष था,
ऐसी समाजोंसे कभी पाता न कोई क्लेश था।

प्रतिज्ञा-पालन।

ली थी प्रतिज्ञा मुनि निकट मातङ्गने सविनय यही,
मैं तो चतुर्दशीके दिवस प्राणी कभी मारूँ नहीं।
मारा न उस दिन जीव उसने नीरमें डाला गया,
तैयार तत्क्षण हो गया उसके लिये आसन नया।
लंकेशका था यह नियम चाहे मुझे जो कामिनी,
उसको बनाऊंगा सदा अपने हृदयकी स्वामिनी।
बलसे किसी भी कामिनीका शील हर सकता नहीं,
अतिशय कठिन अपनी प्रतिज्ञा अन्तलों पाली सही
प्राणान्त तक अपनी प्रतिज्ञा वे नहीं थे तोड़ते,
अवलोक करके अड़चनोंको वे न थे मुख मोड़ते।

देवांगनाओंपर कभी भी वे नहीं मोहित हुये,
अपने नियमसे लोकमें सर्वत्र ही शोभित हुये।

व्यापार।

है वास लक्ष्मीका सदा हे पाठको! व्यापारमें,
चरितार्थ करते थे कभी यह बात हम संसारमें।
द्वीपान्तरों१में जा सदा सम्पत्ति ही लाये यहां,
करते हुये व्यापार उत्तम हम न शरमाये यहां।
व्यापारके कारण हमारा देश सचमुच स्वर्ग था,
अमरेन्द्रसा ही सौख्य अनुपम भोगता नर वर्ग था
हस्त गत करने इसे सव लोग ललचाते रहे,
पर भाग्य विन इसको कभी भी वे नहीं पाते रहे।

प्रातःकाल।

प्रत्यूष२में हमको जगानेके लिये घण्टी वजी,
इच्छामि ही कहते हुये हमने सुखद निद्रा तजी।
झट हाथ मुख धोकर पुनः भगवानकी की वन्दना,
होने लगी आनन्द ध्वनिसे मोद दात्री प्रार्थना।

---

१ गुजरातमें जगड्शाह नामका एक वड़ा भारी जैन सेठ हो गया है। इनका फारस और अरवस्तानसे व्यापारिक सम्वन्ध था।

२ यह विद्यार्थी अवस्थाका वर्णन है।

अध्ययन ।

बैठे हुये हैं शान्त निर्जन प्रान्तमें गुरुवर कहीं,
करने लगे विद्याध्यन आ छात्र बाहिरसे वहीं ।
जिनकी मनोहर उच्च ध्वनिसे गूंजता था बन अहो,
करके श्रवण उस नादको किसका हृदय हर्षित न हो ?

गुरुदेव ।

गुरुदेव वे निःशुल्क ही विद्या पढ़ाते थे हमें,
कल्याण-पथ-पर प्रेमसे वे ही चलाते थे हमें ।
सम्पूर्ण शास्त्रोंका उन्हें था ज्ञान, नहिं अभिमान था,
संसार उनको सब कलाका मानता विद्वान था ।

विद्यार्थी ।

विनयी सदाचारी यहांके पूर्णतः सब छात्र थे,
वे दुर्व्यसनसे दूर थे सब भांति विद्या पात्र थे ।
पढ़ते रहे सानन्द निर्भय श्रावकोंके दानसे,
करते रहे उद्योत वश भर तत्त्वका निज ज्ञानसे ।

मध्याह्न ।

मध्याह्नमें सबने मुदित हो नित्य सामायिक किया,
असमक्ष तबही भक्तिसे भगवानका वन्दन किया ।

वे हो गये फिर लीन अपने नित्यकेही कार्यमें,
आलस्य था उनके न सन्निधि ध्यान था शुभकार्यमें।

संध्या समय।

संध्या समय सब छात्रगण मिल घूमने जाने लगे,
सबही परस्पर प्रेमसे निजकार्य बतलाने लगे।
छाया तिमिर संसारमें जब ओटमें रवि हो गये,
धार्मिक कथा करते हुये तब छात्र सारे सो गये।

जिनालय।

सचमुच हमारे देव-मन्दिर शान्तिके आगार हैं,
सविनय प्रभूको पूजते नित भक्त वारम्बार हैं।
उत्पन्न होती है हमें उस देवगृहमें भावना—
हां, कर न सकता सौख्य कोई भक्ति रसका सामना
कोई कहीं पढ़ते रहे पूजा मनुज मृदु-गानसे,
कोई कहीं सुनते रहे जिन-शास्त्रको अति ध्यानसे।
योगीन्द्र तट बैठे हुये हैं पूछते श्रावक कहीं,
मृदु शान्ति प्रसरित हो रही उस काल चारों ओरही

देव-प्रतिमा।

जैसी हमारी देव-प्रतिमायें मनोहर हैं यहां,
अन्यत्र वैसी रम्यप्रतिमायें भला रक्खी कहां?

जिनको विलोके शीघ्र ही सन्ताप होता दूर है,
आता दृगोंमें भक्तिसे हर्षाश्रुओंका पूर है।
श्रीबाहुबलिसी दीर्घ प्रतिमा है न जगमें दूसरी,
प्राचीनताके साथ जो बतला रही कारीगरी।
मृदु भव्यताके साथ रचना दीर्घ दुष्कर काम था,
वह तो हमारे घोर श्रम या भक्तिका परिणाम था।

देव-मन्दिरमें स्त्रियां।

नूपुर मधुर झंकार करतीं सीढ़ियां चढ़ने लगीं,
वे मन्द स्वरमें भक्तिसे प्रभु-संस्तवन पढ़ने लगी।
मानों प्रभू पूजार्थ भूपर आ गईं सुरनारियां,
साक्षात् किन्नर नारियां, श्री ह्री सकल सुकुमारियां
सद्द्रव्य लेके भक्तिसे की ईशकी अर्चा वहां,
पश्चात् विद्वत्ता भरी की धर्मकी चर्चा वहां।
पतिको प्रथम भोजन करा करके पुनः भोजन किया,
भोजन करानेसे प्रथम कुछ दान पहले कर दिया।

बालक।

वयसे अहो! बालक रहे पर ज्ञानसे बालक न थे,
निज धर्मके पालक रहे पर-धर्मके पालक न थे।

उनने प्रभू-पद-पंकजोंमें शीश अपना धर दिया,
नर-भव सुदित पावनकिया! पावनकिया! पावनकिया

तप।

होना न वशमें इन्द्रियोंके वश उन्हें करना अहा,
तप कर्मक्षयकारण सदा ही शास्त्रकारोंने कहा।
कर्तव्य अपना मानकर तपको हमीं तपते रहे,
जिससे हमारे सर्वगुण जगमें प्रगट होते रहे।

दान।

देते रहे हम दान जगमें सर्वदा निज शक्तिसे,
थोड़ा दिया आहार हमने पात्रको सद्भक्तिसे।
कुछ दान देना प्रति दिवस प्रत्येकका कर्तव्य था,
देता न था जो दान नर वह शव समान अवश्य था।
थोड़ा दिया भी दान अनुपम सौख्य देता था कहीं,
बोया गया वट बीज क्या सुविशाल तरु होतानहीं?
मिलता इसीसे मोक्षफल यह बात जगविख्यात है,
पाता कृषक[१] जब धान्य तब भूसा कठिन क्या बात है

---

१ पात्र दाने फलं मुख्यं मोक्षः सस्यं कृषेरिव।
पलालमिव भोगास्तु, फलं स्यादानुषङ्गिकं ॥१॥

मैत्री।

संसार भरके प्राणियोंसे थी हमारी मित्रता,
सद्भांति यह सब जानते थे 'कष्टप्रद है शत्रुता'।
मरना सभीको एक दिन रहना नहीं संसारमें,
की जाय फिर क्यों दुष्टता इस लोकके व्यवहारमें?

प्रमोद।

होता रहा पुलकित सकलतनु सज्जनोंके दर्शसे,
सम्मान सब करते रहे उनका हृदयके हर्षसे।
थी दृष्टि अवगुणपर नहीं हम तो गुणोंको देखते,
करके उचित प्रतिपत्ति[1] उनकी भाग्यथे निजलेखते

कारुण्य।

करना अनुग्रह दीनजन पर यह सभीका कार्य था,
जिसके हृदय करुणा न थी वह आर्य एक अनार्य था
धनवानसे ले रंकतक संसारमें सब ही दुखी,
रहती यही थी भावना 'कैसे जगत होवे सुखी?'

माध्यस्थ।

जो था हमारा शत्रु भी उससे न हमको द्वेष था,

---

१ सम्मान।
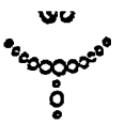
रिपुकी विपुलअज्ञानता लख चित्तमें कुछ क्लेश था।
करके कृपा हे ईश, अब सद्‌बुद्धि रिपुको दीजिये,
मोहमद मात्सर्य सबका दूर भगवन् कीजिये।

हमारा पतन।

इस भांति अतिशय ही समुन्नत थे यहां प्रारम्भमें,
फँसने लगे फिर वेगसे हम लोग ईर्ष्या दम्भमें।
जाने लगा सब ज्ञान हा! आने लगी अज्ञानता,
गृह युद्ध भी ऐसा मचा जिसका नहीं अबलों पता।
पावन हृदयमें स्वार्थने हा! गेह अपना कर लिया,
क्षण मात्रमें उसने हमारे सद्‌गुणोंको हरलिया।
निज बन्धुओंसे ही अहो! तब तो घृणा करने लगे,
सत्कर्म करते भी सकल हम लोकसे डरने लगे।
हम एक हो करके यहांपर तीन तेरह हो गये,
क्षमशीलता, उपकार, करुणा भाव सारे सो गये।
इतनी बढ़ाई भिन्नता निज गेह भी न्यारा किया,
हमने न अपने बन्धुको दुखमें सहारा भी दिया।
हा! उत्तरोत्तर भिन्नता प्रतिदिन यहां बढ़ती गई,
इस भव्य भारतवर्ष पर संकट लता चढ़ती गई।
हा! बट गये हम तो सहज ही फिर अनेक बिभागमें,
क्यों दैवने यों लिख दिये दुर्दिन हमारे भागमें?

श्वेताम्बर जैन ।

उस एक ही सद्धर्ममें दो भेद दुर्दिनसे पड़े,
फिर हो गये हैं भेद उनमें भी यहां कितने खड़े।
देखो प्रभेदोंमें सहज ही भेद अब भी हो रहे,
अवशेष जो कुछ एकता उसको सदाको खो रहे।

हीनाचार ।

सत्कार्यमें भी तो यहांपर फिर शिथिलता आ गई,
बस मानकी आंधी यहां सबके हृदयमें छा गई।
यों मान वशमें आ तभी सग्रन्थ-गुरु बनने लगे,
हा! हंस भी विधि दोषसे मानों चने चुगने लगे।
इन धर्म गुरुओं का यहां प्रतिरोध भी जिसने किया,
उनको गुरुके भक्त गणने नास्तिक बतला दिया।
तब ही समाजोंमें मुदित बैठीं अनेक कुरीतियां,
कहने लगे उनको सहज ही पूर्वजोंकी रीतियां।

जातियोंकी उत्पत्ति ।

अपने विभागों के अहो! ये नाम भी धरने लगे,
दो चार जन मिलकर प्रमुख नियमादि भी रचने लगे।
होके नियमसे बद्ध सब व्यवहार टोलीमें किया,
यों दूसरों की अवनति पर ध्यान नहिं हमने दिया।

जिस संघमें थोड़े मनुज थे, नष्ट सहसा हो गया,
लाचार होके अन्तमें या दूसरोंमें मिल गया।
इस विश्व विश्रुत वर्णको तब तो कहीं माना नहीं,
उससे कभी निज धर्मका कल्याण भी जाना नहीं।
हो संघकी अति वृद्धि नित उत्कट यह इच्छा रही.
अतएव अपनी बालिका परको न देते थे कहीं।
विख्यात होनेके लिये इस जातिकी रचना हुई,
पर आज वह बहु अड़चनोंसे हाय! जाती है सुई।

धर्म गुरुओंका अन्याय।

सग्रन्थ गुरुओंका यहां अन्याय नित्य अनल्प था,
पर उस समय श्रद्धान भी इसको न उनमें अल्प था
उनके बचनको भक्त गण सर्वज्ञ वाणी मानते,
हा अन्ध श्रद्धामें मनुज अपना न हित पहिचानते।
करते रहे ये तंग जगको पग पुजानेके लिये,
बनते रहे ये गुरु यहां नृपसम कहानेके लिये।
जो बात हां होगी नहीं भूपालके दरबारमें,
वह बात थी इन भ्रष्ट गुरुओंके विपुल दरबारमें।

तेरह पन्थ और बीस पन्थ।

तब तो यहां रचना हुई सप्रेम तेरह पंथकी,

मिथ्या गुरु इनको कहा पंक्ति यता सद् ग्रन्थकी।
उस काल पक्षापक्षमें दो भेद सहसा पड़ गये,
यों एक हीरेके यहां दो खण्ड योंही जड़ गये।

और भी पतन।

यों तो प्रथमसे ही अधिक हम हो रहे कमज़ोर थे,
तिसपर विधर्मी कर रहे अन्याय हमपर घोर थे।
निःशेष करनेमें इसे किस धर्मने की है कमी,
उस काल भारतमें विकट कैसी कटाकट थी जमी?

८००० जैन साधुओंका बलिदान।

हा! धर्मके ही नामपर अन्याय नित होते रहे,
धर्मिष्ठ मानव धर्म हित निज प्राणको खोते रहे।
देखो हमारे साधुओंको पेल घानीमें दिया,
धर्मान्धता वश पापियों ने क्या नहीं उनका किया?
हंसते हुये सानन्द वे मुनि तीक्ष्ण शूलीपर चढ़े,
हा! चीथते थे श्वान तनको पर रहे अविचल खड़े।
है देह क्षण भंगुर नियम है, धर्म फिर मिलता नहीं,
जो धर्मपर रहता अटल मरकर सदा जीता वही।
अब भी भयङ्कर चित्र ये मीनाक्षि[1] मन्दिरमें बने,

---

[1] मदुराका मीनाक्षी मंदिर।

जब क्रूरताका दृश्य वह आता दृगोंके सामने।
कहना हमें पड़ता यही तब वे मनुष्य अवश्य थे,
पर पामरोंके राक्षसोंसे भी बड़े दुष्कृत्य थे।

अत्याचार।

की अन्य लोगोंने हमारे धर्म प्रति अति धृष्टता,
लेकिन विदा नहिं हो सकी जिन धर्मकी उत्कृष्टता
अन्याय अधमोंने किये यों ओट ले परमार्थकी,
हा! राक्षसोचित कार्य द्वारा पूर्तिकी निज स्वार्थकी
तुड़वा हमारे देव-मन्दिर रम्य निज मन्दिर किये,
बोले कहीं मुखसे वचन तो शूलिपर ही धर दिये।
यदि जान पावें जैन हैं तो मौत सिरपर ही खड़ी,
कैसे रहेगा धर्म भूमें थी हमें चिन्ता बड़ी?
उस काल अत्याचारियोंसे गुप्त ही रहना पड़ा,
अपमान प्यारे धर्मका हमको दुःखित सहना पड़ा।
प्रभु-पूज्य-प्रतिमायें हमारे सामने तोड़ी गई,
अथवा अतल गम्भीर जलमें नित्यको छोड़ी गई।
अब भी अनेकों ठौर हा! हा! देख भग्नावशेषको,
उन पामरोंके कृत्यसे मन प्राप्त होता क्लेशको।
होता रहा कितना यहांपर नित्य अत्याचार था,

जो देखता था दृश्यको देता वही धिक्कार था।
हा! नर पिशाचों से हमारे ग्रन्थ नष्ट किये गये,
यों शास्त्र जलवा कर यहां आहार बनवाये गये।
छह मास तक उनकी यहां होली मुदित होती रही,
पर पापियों के भारसे पृथिवी व्यथित होती रही।
पाया जहांपर ग्रन्थ जो वह अग्निमें डाला गया,
अथवा नदीकी धारमें ही द्वेष वश डाला गया।
हा! हो चुके कितने हमारे ग्रन्थ जगतीसे विदा,
उनको गिनानेमें यहां असमर्थ हैं हम सर्वदा।

अवशेष।

जिस समय दुखसे हमें जीवन यहां निज भार था,
बलहीन थे इससे हमें सब कह रहा संसार था।
निर्मल मुखों पर लग चुकी थी पूर्णतः तब कालिमा,
वह सूर्य अस्ताचल गया तो भी प्रगट थी लालिमा।

सेठ।

सम्पत्ति रहती है जहांपर शील टिकता ही नहीं,
यह बात प्रायः सर्वदा मुखसे कहा करती मही।
लेकिन शुदर्शन सेठने इस बातको मिथ्या किया,
धनशील दोनों रह सके यह विश्वको बतला दिया।

श्रीमान् माणिकचन्द्रजीसे दानवीर सुसेठ थे,
विद्या तथा सौजन्यतासे लोकमें जो श्रेष्ठ थे।
छात्रालयोंको द्रव्य पूर्वक जन्म इनने था दिया,
यह सम्पदा रहते सभीका दीर्घ होता नहिं हिया।

भामाशाह।

फिर भी हुये उत्पन्न दाता शूर भामाशाहसे,
देदी अतुल धन राशि जिसने देश हित उत्साहसे।
श्रीमान् राणाने उसे पाकर मिटाया क्लेशको,
सानन्द, हर्षित शीघ्रही पाया पुनः निज देशको।

वस्तुपाल, तेजपाल।

सन्मार्ग दर्शक वस्तुपाल सदृश सचिव तब भी हुये,
हां तेजपाल समान भी वीराग्रणी हममें हुये।
जिनके गुणोंका गान सादर शत्रु भी करते रहे,
पापी दुराचारी सदा ही नाम सुन डरते रहे।

पण्डित गण।

पण्डित यहां मर्मज्ञ थे जयचन्द्र भूधरदाससे,
श्रीमान् टोडरमल्ल, दौलतराम, श्रीसुखदाससे।
कवि भी बनारसिदास, द्यानतसे हुये हममें कभी,
गोपालदास सुधी बरैया विज्ञ वृन्दावन सभी।

जिनके विपुल पाण्डित्यसे सब ही चकित होते हुये,
हम उठ पड़े थे घोर निद्रासे अहो ! सोते हुये।
सद्सत्य कहनेमें उन्हें संसारका कुछ भय न था,
निज धर्म हित वे भोग सकते थे सभी भीषण व्यथा।

सौख्यलता (वस्तुपालकी धर्मपत्नी)

ये देवियां ही तो लगातीं थी प्रभूको पन्थमें,
इनकी अनेकों आज भी मिलतीं कथायें ग्रन्थमें।
वह सुखलता जगमें हुई पतिके लिये सुखकी लता,
जिसने सहज उद्धारका पथ था दिया पतिको बता।
तलवार भी कुछ देवियां देखो ग्रहण करती रहीं,
निज शत्रुओंके सिंहनी सम प्राण वे हरती रहीं।
जिस ओर वे संग्राममें सोत्साह जाकरके लड़ीं,
उस ओर रणमें देखलो रिपु पक्षकी लाशें पड़ीं।

स्त्रियोंमें मूर्खताका प्रवेश।

इन देवियोंमें मूर्खता उस काल जो आके जमीं,
उनकी अविद्यामें सहायक सर्वदा भी थे हमीं।
गृह-कार्यके कारण उन्हें मिलता नहीं अवकाश था,
अतएव कुछ दिन विदुषियोंका तो यहांपर ह्रास था।

❀ भूतखण्ड समाप्त ❀

वर्तमान-खण्ड ।

प्रार्थना ।

लिख चुके हैं ईश ! कुछ लिखना अभी अवशेष है,
लिखते हुये सम्प्रति-दशा होता हृदयको क्लेश है।
हे पूज्यतम जिनराज मेरे चित्तमें जब आप हो,
दुःसाध्य ऐसा कार्य क्या है जो न अपने आप हो।

२

चाहक-चकोरोंके लिये हो आप अनुपम चन्द्रमा,
निर्दोष हो, गुणकोष हो, सर्वज्ञ हो परमातमा।
उत्कृष्ट हो, जगइष्ट हो, सबलोकके भगवान हो,
निष्काम हो, सुखधाम हो, बलवान हो, विद्वान हो।

३

सब विश्व-जीवोंको सदा सद्बोधके दाता तुम्हीं,
मद, मोह, मत्सर, लोभ, तृष्णा, क्रोधके घाता तुम्हीं।
हम आपकी सन्तान होकर आज हा। कैसे गिरे?
शुभ दिन हमारे दैवसे सर्वेश। क्यों ऐसे फिरे?

४

वैभव गया सब रंक हैं, विद्या गई अज्ञान हैं।
हा! हो गया सबही विदा रूखा यहां अभिमान है।
हम आज कोई कामके भी योग्य इस जगमें नहीं,
स्वयमेव रक्षा कर सकें इतना सुबल तनमें नहीं।

५

यह मनुज चाहे मरे सबको पड़ी है निज स्वार्थ की,
कोसों हुई है दूर हमसे बात अब परमार्थ की।
प्रभु आपही बतलाइये, हम दुःख कथा किससे कहें,
बालक पिताको छोड़कर मनकी व्यथा किससे कहें?

६

क्यों आपने कोमलहृदयको कर लिया अतिशयकड़ा?
हे देव! किस दुर्भाग्यसे ऐसा समय लखना पड़ा।
करते परिश्रम रातदिन मिलता न शुभ परिणाम है,
हा! हो रही भीषण अधोगति नाम है नहिं धाम है।

७

जब बढ़ रहे सब लोग जगमें तब हमारा ह्रास है,
हमको न अपने बन्धुओंका ही रहा विश्वास है।
मृदुता, सरलता, सत्यता, मैत्री, सुशान्ति थी जहां,
देखो कुटिलता, नीचता, भीषण अशान्ति है वहां।

८

जो जो पढ़ाया था हमें वह आज सब विसरादिया,
आदेश अनुपम आपका सर्वेश! हा! ठुकरा दिया।
जिस मार्गपर पहिले चलाया हम न अब उसपर चले,
चरितार्थ तब कहवत हुई हम मूर्खनरसे पशु भले।

लेखनी।

हे लेखनी निर्भीक लिख दे अब हमारी दुर्दशा,
प्रत्येक मानव रूढ़ियोंके जालमें कैसा फंसा?
करना पड़ेगी बन्धु कृत्योंकी तुझे आलोचना,
प्रियवर! हमारे क्या कहेंगे यह न मनमें सोचना।

१०

प्रिय-सत्य लिखनेमें तुझे त्रैलोक्य पतिका डर नहीं,
जो सत्यसे डरता जगत्‌में नर नहीं, वह नर नहीं।
लज्जा-विवश यदि दोष हम कहते नहीं तो भूल है,
भीषण तनिक सी भूल वह सर्वत्र अवनति-मूल है।

११

जबतक न दोषोंकी कड़ी आलोचना की जायगी,
तबतक न यह नर जाति अपने रूपको भी पायगी।
कर्तव्य वश करना पड़े जो कार्य इस संसारमें,
वह कार्य कर, आधार प्रभु कर्तव्य पारावारमें।

प्रवेश।

लिखती रही जो लेखनी निज पूर्वजोंकी गुण-कथा,
वह लिख सके कैसे हमारे दुर्गुणोंकी अब कथा।
जिसने लिखा था पूर्वमें हर्षित हृदय आनन्दको,
लिखने चली है आज वह रोकर अहो! दुख-द्वन्दको।

१३

उत्साहसे जिसने अनेकों पूर्वमें भूषण लिखे,
दुर्भाग्य ही है मुख्य जो इस भांति अब दूषण लिखे।
जिसने लिखा था स्वर्ग पहिले नर्कको लिखने चली,
जिसने लिखा था दीर्घ-सर वह गर्तको लिखने चली।

आधुनिक जैनी।

है हर्ष इतना ही हमें कुछ आज है जीवन यहां,
पर शोक होता है प्रचुर उसमें न जैनीपन यहां।
जीवन विना मानव जगतमें है न कोई कामका,
जैनत्व बिन जैनी कहाना रह गया बस नामका।

१५

यों तो कहानेके लिये हम आज बारह लाख हैं,
सच्चे न बारह भी मिलेगें, बस समझ लो राख हैं।
कहते यही सब लोग मुखसे देखकर व्यवहारको,
क्या जैनियोंने ही समुन्नत था किया संसारको?

१६

पर उन्नतीका एक भी दिखता न उनमें चिन्ह है,
निज धर्मसे तो सर्वथा व्यवहार उनका भिन्न है।
यदि पूर्वके आदर्श भी ऐसे रहे होंगे कहीं,
तो जैनियोंने विश्वकी उन्नति न की होगी कहीं।

१७

हम पूर्वजोंके मार्गपर जबतक मुदित चलते रहे,
तबतक हमारे कार्य सब संसारमें फलते रहे।
उनको सहज बिसरा दिया पड़कर प्रबल आराममें,
पड़ना न चाहें सौख्य तज सौजन्यताके काममें।

१८

जिनको गले पहिले लगाया आज हैं वे शूलसे,
जिनको सदा जगसे भगाया आज हैं वे फूलसे।
वह सर्व तो सुखरूप सुन्दर धर्मका भी है कहां?
जब हम गिरे तो धर्म कैसे हाय! टिक सकता कहां?

१९

ईर्षा, कलहका आज घर घर बीज हा! बोया हुआ,
अज्ञानकी मदिरा पिये प्रत्येक नर सोया हुआ।
निज बन्धुओं प्रति सर्वदा रहता अधिक कलुषित हिया,
करते मुदित वह कार्य जो उनके न प्रति पहिले किया।

२०

हा! जैन कहलेमें हमें आती अधिकतर लाज है,
ऐसी अवस्था कब हुई जैसी अवस्था आज है।
यों जैन कहते हैं किसे? पूछे कभी यदि दूसरा,
बस! पण्डितों से पूछिये मुखसे निकलती है गिरा।

२१

जैसे हुये जगमें पतित हम दूसरे वैसे नहीं,
अवलोक कर ऐसी दशा यह क्यों न फट जाती मही।
अब अन्यको जैनी बनाना सर्वथा ही दूर है,
निज धर्मका श्रद्धान हमसे हो रहा अति दूर है।

२२

जिनके हृदयमें थी यहांपर एक दिन विस्तीर्णता,
उनके हृदयमें पूर्णतः स्थिर हुई संकीर्णता।
जिस धर्मके धारक मनुज सबको लगाते थे गले,
वे खा रहे हैं ठोकरें हो आज मिट्टीके डले।

२३

हा! हा! तनिक सी बातपर मिथ्या वचन भी बोलते,
पर कामिनी या द्रव्यपर भी तो यहां मन डोलते।
जिस कृत्यको संसारमें हा! नर न कर सकते कभी,
निर्भीक हम नित पाशविक दुष्कृत्य कर सकते सभी

२४

अज्ञानता प्रिय मूर्खतामें आज कैसे हैं पड़े,
हा! खा रहे हैं लात घूसे हो नहीं सकते खड़े।
अपने हिताहितका यहांसे ज्ञान सब जाता रहा,
मद मोह मत्सर द्रोह ही अब ठौर पाता है अहा।

२५

हम तो स्वयं ही मूर्ख हैं पर दूसरा हमसे बने,
जिसमें सना गृह पति यहां परिवार भी उसमें सने।
कुछ भी नहीं है सन्निकट पर इन्द्रियोंके दास हैं,
सुख धूलमें सब मिल गये दूने हमारे त्रास हैं।

परिवर्त्तन।

यह देख परिवर्तन विकट होता बड़ा आश्चर्य है,
हे वीर सन्तानो! कहां जाके छुपा ऐश्वर्य है।
है है कहां सम्प्रति तुम्हारी दक्षता निष्पक्षता,
व्यापारमें कोई हमारी कर सका समकक्षता?

२७

हे देव! हम ऐसे गिरे किस पापका परिणाम है?
सुखका सदन किस पापवश हा! हो रहा दुख धाम है
स्वर्गीय सुख जाता रहा नारकीय है अति यंत्रणा,
जिनके न वैभवका पता था वे चवाते हैं चना।

२८

जिनकी निकलती थी सवारी, आज नङ्गे पांव हैं,
जो थे सशक्त अरोग अतिशय, आज तनमें घाव हैं।
थे जिस सरोवरमें कमल अब शेप उसमें पङ्क है,
जिसके निकट था इन्द्र-वैभव हाय अब वह रङ्क है।

जैन-धर्मकी प्राचीनता ।

इस धर्मकी प्राचीनताके चिह्न मिलते जा रहे,
उपलब्ध मथुरा-स्तूप अरु उदयागिरी[1] बतला रहे।
प्राचीनता इसकी जगत भर कर रहा स्वीकार है,
इस धर्मका ही आजलों देखो ऋणी संसार है ।

३०

हां, जब न पृथ्वी पर कहीं भी, बौद्ध, वैदिक धर्म थे,
कल्याण प्रद सर्वत्र तब इस धर्मके शुभ कर्म थे ।
जितने पुराने जैन-मन्दिर आज मिलते हैं यहां,
उतने पुराने अन्य धर्मोंके भला मिलते कहां ?

३१

था राष्ट्र धर्म कभी यही सिद्धान्त अति अभिराम थे,
बलवान थे, विख्यात थे, गुणधाम, थे शिवधाम थे।
इस धर्मका ही मुख्यतः नित केन्द्र भारतवर्ष था,
क्या ज्ञानमें क्या ध्यानमें सबमें बढ़ा उत्कर्ष था।

३२

चमका न धर्मादित्य केवल सर्व हिन्दुस्तानमें,

---

१ खंडगिरी उदयागिरी क्षेत्रपर २५०० वर्षका महाराजा खारवेल के समयका प्राचीन शिला लेख है ।

फैली प्रभा चिरकाल इसकी एशिया,१ यूनानमें।
कार्थेज, अफरीका,२ तथा वो मिश्र रोम फिनीशिया,
जाके यहांसे भी वहांपर वास जैनोंने किया।

---

१ "जब बौद्धमत और हिन्दू मतके लोगोंमें सारे हिन्दुस्तानमें संग्राम हो रहा था, तब बौद्धमत और जैनमतके लोग वहांसे निकल कर यूनान कार्थेज, फिनीशिया, फिलस्तीन, रोम और मिश्र आदि देशोंमें पहुंच कर आबाद हुये।"

२ अब हम देखते हैं कि जैन धर्म अफरीकामें भी फैला हुआ था इसके लिये भी "हिन्दुस्तान कदीम" पुस्तक साक्षी है। इसके पृष्ठ ४२ पर इस प्रकार लिखा है। "जिस प्रकार यूनानमें हमने साबित किया कि हिन्दुस्तानके हमनाम शहर और पर्वत विद्यमान हैं इसी प्रकार मिश्र देशमें भी जानेवाले भाई अपने प्यारे वतनको नहीं भूले ; उन्होंने वहां एक वर्तमान Meroo (सुमेरु) रक्खा। दूसरे पर्वतका नाम Caela (कैलास) रक्खा। एक सूना गुरना है जिसमें मन्दिर और मूर्तियां गिरनार जैसी आजतक मिलती हैं, जो अवश्य वहांके ही (जैनी) लोगोंने बनाया होगा। इत्यादि"

(दिगम्बर जैन वीर सम्वत् २४५२ अङ्क ४)

यूनानके अथेन्स नगरमें आज भी एक जैन श्रमणकी समाधि जैन धर्मके प्रभावको प्रगट कर रही है। सीलोनसे (लंका) में भी भगवान महावीरका धर्म प्रचलित हुआ था, यह बात स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंसे प्रगट है। वहांके प्रसिद्ध नगर अनुरुद्धपुरमें एक निग्रन्थ

३३

जगके पुरातन वेद भी अस्तित्व इसका मानते,
इतिहास वेत्ता धर्मकी प्रचीनताको जानते।
जो बौद्ध-मतसे जैनियोंकी मानते उत्पत्तिको,
निष्पक्ष हो देखें तनिक इतिहासकी सम्पत्तिको।

दरिद्रता।

क्यों हाय! इस दारिद्रने अब वासघर२में किया?
प्रिय प्राणियोंका प्राणधन हा! चूस सब इसने लिया।
आनन्दमें जो लीन थे वे आज फांके मस्त हैं,
धनके बिना सब लोगहा! हा! त्रस्त हैं अतिव्यस्तहैं।

३५

अपने सदनकी हींनता भी हम न कह सकते कहीं,
दो-चार पैसे भी किसींसे मांग हम सकते नहीं।
रूखा तथा सूखा यहां आहार जो कुछ पा लिया,
करते हृदय सन्ताप अधिकाधिक उसेही खा लिया।

श्रमणोंका मन्दिर बतलाया गया है। (दिगम्बरजैन वीर सम्वत् २४५६ अङ्क १, २)

जैनियोंमें एक कनक मुनि सन् ई० से २०९९ वर्ष पहले हो गये हैं उनका शिखर बन्द सुन्दर मन्दिर डाक्टर फुहारने नैपालके हिमालयकी तटकी ओर निजलिवा ग्राममें देखा है। (दिगम्बरजैन)

३६

योंं कौनजन चाहे कहो संसारके दुख भोगना,
पर भोगने पड़ते विवश अयतापनित धनके विना।
आभूषणोंसे जो मनुज दिखता यहांपर है बड़ा,
उसके भवनमें भी विकट दारिद्र्यका डेरा पड़ा।

३७

होती न पूरी आज आशा एक भी इस चित्तकी,
होती नहीं जनपर कृपा हा! हा! कभी भी वित्तकी।
भाती नहीं खादी कभी बारीक मलमल चाहिये,
पैसा विना उसके लिये मनमें सदा ललचाइये।

३८

परिवार पोषण भी यहांपर हो रहा अतिभार है,
धनके विना निस्सार जीवन मृत्युमें ही सार है।
करके कठिन दिनभर परिश्रम जो यहां पैदा किया,
मिलकर उसे दोनों जनोंने प्रेम पूर्वक खा लिया।

३९

निद्रा न आती रातमें कर याद प्रातःकालकी,
हा! स्वप्नमें दिखता उसे दारिद्र्य भीषण पातकी।
अपनी दशापर सर्वदा रहते दुखित परिणाम हैं,
उन दीन दुखियोंसे कभी होते न धार्मिक काम हैं।

४०

रख द्रव्यकी आशा हृदय जाते मनुज परदेशमें,
पर क्या कमाते हैं कहो रहकर कठिनतर क्लेशमें।
फिरते रहे सारे दिवस रख शीशपर वे खोंमचा,
जब शामको आये सदन कुछ भी नहीं उनको बचा।

४१

इस भांति कुछ ही कालमें पूंजी सकल स्वाहा हुई,
उसकाल उनकी दुर्दशा मृत-तुल्यसी हा! हा! हुई।
मिलती न कोई नौकरी मजदूरियां करने लगे,
जैसे बना तैसे अहो। वे पेटको भरने लगे।

४२

आते अनेकों पत्र गृहिणीके महादुखके भरे,
खर्चा न भेजा आपने जाते यहां भूखों मरे।
हा! सेजपर बाला पड़ी है घोर दैहिक तापसे,
प्रिय पुत्र भी कितने दिनोंसे नहिं मिला है बापसे।

४३

करना सुताकी औषधि पैसे बिना कैसे करें,
हा! हा! क्षुधातुर लाल ये धीरज कहो कैसे धरें?
रहती रही पाकिट सदा जिनकी मिठाईसे भरी,
आहार अब उनको कठिन ये भाग्यकी महिमाहरी।

४४

झट भेजिये खर्चा नहीं तो नाथ इस क्षण आइये,
दो चार बढ़िया साड़ियां भी साथ लेते आइये।
तब दुःखप्रद यह पत्र पढ़ दो चार आंसू पड़ गये,
हा! दीनताकी वेदनासे प्राण सहसा उड़ गये।

दैव।

हा! एक तो सर्वत्र ही इस दीनताका राज है,
तैयार खेती पर यहां पड़ती भयंकर गाज है।
आता नदीका पूर भी हमको सतानेके लिये,
रोते हुएको और भी अतिशय रुलानेके लिये।

४६

धन-जन तथा पश्वादि उसमें सर्वदाको बह गये,
हम हाय, बिछुड़े वनहरिण सम ही अकेले रह गये।
मिलता कठिन सारा परिश्रम आज सहसा धूलमें,
किस पापके परिणामसे अब दैव है प्रतिकूलमें।

४७

होती कहीं अतिवृष्टि है जिससे भयंकर त्रास हो—
धन नाश हो जन नाश हो, हा! सर्वसत्यानाश हो।
हा! तैरने लगते मनुज-शव नीरमें फुटबालसे,
जो थे बदन सुषमा भरे वे दीखते विकरालसे।

४८

सूखे हुए सारे सरोवर नीर आवश्यक जहां,
हा ! दैवके ही रोषसे होती नहीं वर्षा वहां।
तन धारियोंका विश्वमें जल-अन्न प्राणाधार है,
जिसठौर दोनों ही नहीं उस ठौर क्या आहार है?

४९

हिम सन्ततिसे म्लान अतिशय देख सुन्दर क्षेत्रको,
अतिकष्ट क्या होगा नहीं बोलो। कृषकके नेत्रको।
हा ! खेतकेही सूखते सूखी हृदय-आशा-लता,
कहते नहीं बनती कभी दुर्दैवकी अदयालुता !

५०

लगती कभी सहसा भयंकर दुखदाई आग है,
करना तभी पड़ता विवश घर द्वार अपना त्याग है।
यों भस्म क्षणभरमें हुआ सामान सारा आगमें,
लिखदी जगतकी आपदा किसने हमारे भागमें।

५१

तब घर न बाहरके रहे पूरे रजकके श्वान हैं,
बस तुच्छ भिक्षापर यहां टिकते हमारे प्राण हैं।
फिर धर्मसे नितके लिये भी वन्दना करना पड़ी,
हम मिल गये पहिनो जहांपर सान्त्व बचनोंकी लड़ी

दुर्भिक्ष ।

सब ठौरका दुर्भिक्ष आकरके यहांपर जम गया,
शम, दम, दयाके साथमें धन भी यहांका सब गया
दुष्काल पीड़ित मानवोंकी ध्यानसे सुनिये कथा,
हा । चीर डालेगी हृदयको वेगसे उनकी कथा ।

५३

है न सुन्दरता तनिक भी कृष्ण कर्कश गात्र है,
उनके वन्दनपर जीर्ण छोटीसी लंगोटी मात्र है ।
उनका पराई रोटियोंपर ही यहां गुजरान है,
हम कौन हैं क्या कर सकें इसका न उनको ज्ञान है ।

५४

हा । अन्न हा, हा, अन्नका रव कान फोड़े डालता,
डर जायगा नर दूसरा उनकी विलख विकरालता ।
वे नर नहीं हैं किन्तु सच दुर्भिक्षके ही रूप हैं,
रीते पड़े उनके उदर ज्यों नीर बिन हा ! कूप हैं ।

५५

जगदीश ही जाने क्षुधातुर प्राण कितने खो रहे,
निज धर्मसे या कर्मसे भी हाथ कितने धो रहे ।
नहिं देखता है नर पिपासाकुल रजकके घाटको,
कब छोड़ सकता है क्षुधातुर हाय । जूठे भातको ।

५६

बस अस्थियां अवशेष हैं तनमें न किञ्चित् रक्त है,
हा! जल रही जठराग्नि अन्दर पेट उनका रिक्त है।
आंखें सहज अन्दर धंसी चहरा हुआ कङ्काल है,
दुर्भिक्ष पीड़ित-मानवोंका वृत्त अतिविकराल है।

५७

भाई! तुम्हारा हो भला चिरकालतक सुखसे जियो,
तुम नीरके बदले सदा ही क्षीर या अमृत पियो।
सुख हो यहां दिन रात दूना, आपकी सन्तानको,
उच्छिष्टही दे दान कुछ राखो हमारे प्राणको।

५८

सब कुछ तुम्हें प्रभुने दिया हमको मिली है दीनता,
करुणा करो! करुणा करो! अवलोकके यह हीनता।
अब न ठुकराओ पदोंसे हम तुम्हारे दास हैं,
सब जानते हैं आप की आवास नहिं अतित्रास हैं।

५९

पीड़ित पड़े हैं दीन सड़कों पर कहीं रोते हुए,
हा! राजसेवक मारते मनमें मुदित होते हुए।
किसको सुनायें वे व्यथा उनका यहां कोई नहीं,
दुर्भिक्ष पीड़ित मानवोंसे भर गई भारत-मही।

६०

कैसे विताते दीन वे रजनी भयंकर फूसकी,
बस, एक चिथड़ा अङ्गपर नहिं झोपड़ी है फूसकी।
सी-सी दुखित करते हुए वे रातभर हैं जागते,
मिलता न रक्षण हेत फट्टा वे घरोंघर मांगते।

६१

जब सूर्य तपता है प्रचुर निकलें न कोई धामसे,
होती व्यथा तब दीनजनको पेटसे भी घामसे।
पगमें नहीं हैं चप्पलें, छत्ता नहीं है हाथमें,
हा! फिर रहे भिक्षार्थ वे प्रस्वेद बूंदें साथमें।

६२

पडता यहां पानी अधिक वे वृक्षके नीचे पड़े,
शीतल पवन आघातसे हैं रोंगटे उनके खड़े।
असहाय वे नर सर्वदा धनहीन हैं तन क्षीण हैं,
हा गिड़गिड़ाते ही गिराको बोलते वे दीन हैं।

व्यभिचार।

रोती रहे चाहे निरन्तर गेहमें निज सुन्दरी,
वाराङ्गनाकी प्रेमसे जाती यहां थैली भरी।
जीवन मयी सुखदायिनी वेश्या हृदयकी वल्लभा,
सहधर्मिणी पाती नहीं उसके नखोंसम भी प्रभा।

६४

करते सभी कुछ शक्तियोंका नाश उसके हाथमें,
हम सौंप देते हैं सकल सम्पत्ति उसके हाथमें।
निज कामिनीके आभरण देते उसे ला हर्षसे,
मानों यहांपर आ गई है अप्सरा ही स्वर्गसे।

६५

खोते पतङ्गे मुग्ध दीपक पर हुये निज प्राणको,
हम रूपपर मोहित हुये खोके सकल सन्मानको।
उनकी कटाक्षोंमें सदा देखो विकट जादू भरा,
जिसको निहारा प्रेमसे वह तो व्यथित होके मरा।

६६

श्रृङ्गार कर अपनी छतोंपर अप्सरासी शोभतीं,
संकेत करके जो विविध नित पन्थियोंको मोहतीं।
है स्वच्छ वस्त्राच्छन्न मानों एक विष्ठाका घड़ा,
वह तो अपावन हो गया जो भी तनिक इससे अड़ा।

६७

होते प्रमेहादिक यहां वाराङ्गना-सहवाससे,
नर छोड़ देते प्राण अपने रोगके ही त्राससे।
होता न इससे लाभ कुछ अपकीर्ति होती है घनी,
रहता दुखी परिवार सब, माता, पिता प्रियकामिनी।

६८

प्रत्येक शहरोंमें अहा! आवास इनके हैं बने,
अतएव कितने ही युवक इन निन्द्यव्यसनोंमें सनें।
सुन्दर शहरमें देखलो जितना बड़ा व्यापार है,
व्यापारसे तो कई गुणा हा! बढ़ गया व्यभिचार है।

६९

चलती हुई पर नारियोंको छेड़नेमें नाम है,
आंखें लड़ाना और हंसना भी हमारा काम है।
सुन गालियां उनकी मधुर हम और थोड़े हँस पड़े,
संसारमें होंगे नहीं निर्लज्ज हमसे भी बड़े।

७०

जिनका किया स्पर्श जल कोई न पी सकता यहां,
वे शूद्र ललनायें कहींपर गुप्त-गृहिणी हैं अहा!
हो नीचसे भी नीच केवल आंख लड़ना चाहिये,
सर्वस्व भी देकर उन्हें निज काम करना चाहिये।

रोग।

कैसा भयंकर आजकल इन व्याधियोंका जोर है,
इनसे प्रपीड़ित मानवोंका आर्त्तरव चहुं ओर है।
जिन व्याधियोंका नाम वैद्यक ग्रन्थमें मिलता नहीं,
जिनपर किसीका भी कभी उपचारतक चलता नहीं

७२

आके कहांसे बस गई वे व्याधियां इस देशमें,
सड़ते रहे मानव अनेकों हाय ! उनके क्लेशमें।
डाक्टर तथा कविराज[1] भी तो आज दूने बढ़ रहे,
उन व्याधियोंका नाम वे भी तो नहीं बतला रहे।

हम और हमारे पूर्वज।

जैसे हमारे पूज्य थे उनकी न हममें गन्ध है,
रहते हुये सम्बन्ध भी उनसे न अब सम्बन्ध है।
वे कौन थे क्या कर गये इसको भुलाया सर्वथा,
आडम्बरोंने आज जगभरको लुभाया सर्वथा।

७४

उनकी कथाओंपर कभी विश्वास भी आता नहीं,
उनका सुखद वह नाम भी अब कानको भाता नहीं।
उनके अलौकिक कार्यको हम आज मिथ्यामानते,
अपने हिताहितको तनिक भी हम नहीं पहिचानते।

७५

पूर्वज प्रबल रणवीर थे तो आज हम गृह-वीर हैं,
वे क्षीर थे विख्यात तो हम आज खारे नीर हैं।

---

१ वैद्य।

जीवन बिताते थे सकल अपना परम पुरुषार्थमें,
हम भी बिताते आज जीवनको यहांपर स्वार्थमें ।

७६

वे चाहते थे लोकमें सबका सतत उपकार हो,
हम चाहते हैं लोकमें सबका सतत अपकार हो ।
उनके हृदय इच्छा रही नित दूसरे उन्नत बने,
लिप्सा हमारी है यही नित दूसरे अवनत बने ।

७७

वे थे जगतके रत्न अनुपम हम न पदकी धूल हैं,
वे फूल थे सुरभी सहित अब हम न किंशुक फूल हैं।
त्रैलोक्यके वे चन्द्रमा थे हम न अब नक्षत्र हैं,
पूर्वज हमारे प्रेमसे पुजते रहे सर्वत्र हैं ।

धर्मकी दुहाई ।

प्रत्येक कामोंमें यहां देते दुहाई धर्मकी,
कर बैठते हैं स्वार्थवश हा ! हा ! बुराई धर्मकी ।
अपने करोंसे आज सब सद्धर्मकी जड़ काटते,
मन्दारतरुको काट करके हाय ! भूमें पाटते ।

गृह-कलह ।

अब गृह-कलहकी तो कथा हमसे कही जाती नहीं,
प्यारी कलह-देवी कहो आदर कहां पाती नहीं ?

इस फूटसे होगा कदाचित् ही भवन कोई बचा,
इसकी कृपासे कौरवों से पांडवों का रण मचा।

८०

लड़ते यहां देखा गया है पुत्र अपने बापसे,
व्याकुल सदा रहते पिताजी मानसिक सन्तापसे।
इस गृह-कलहसे आज सत्यानाश जगका हो रहा,
हा! सद्गुणोंसे हाथ अपना शीघ्र भारत खो रहा।

८१

दो बन्धु भी आरामसे एकत्र रह सकते नहीं,
वे दूसरेका प्रेमसे उत्थान सह सकते नहीं।
जितने मनुज हों गेहमें उतने यहां चूल्हे बने,
अभिमानमें आकर किसीको भी नहीं कुछ वे गिने।

८२

निज बंधुओं के साथ देखो शत्रुसा व्यवहार है,
अवलोक इस व्यवहारको जग दे रहा धिक्कार है।
दो बैल भी आनन्दसे एकत्र खा सकते यहां,
पर एक थालीमें यहां दो बन्धु खा सकते कहां?

८२

कोई कलहसे इस जगतमें मिष्ट फल क्या पायगा,
लंकेशसा भी राज्य भूमें शीघ्र ही मिल जायगा।

बन-फूटसे तो पेटको मिलती जरासी शान्ति है,
गृह-फूटसे तो लोकमें मचती सदैव अशांति है।

गृह-स्वामी।

आश्चर्यकारी आजकल गृह-स्वामियों का हाल है,
निज प्रेयसी अनुसारही सम्पूर्ण उनकी चाल है।
सहवासियोंको वे समझते गर्ववश निज दासही,
परिवार पालन रीतिको वे जान सकते हैं नही।

८५

वे अपहरण करते सहज हीं बन्धुके अधिकारको,
हा! त्रास देनेमें नहीं वे चूकते परिवारको।
सब लोग जावें भाड़में बस, स्वार्थसे ही काम है,
सुख धाम अब ऐसे नरों से बन रहा दुख-धाम है।

मूर्खता।

सर्वत्र ही कैसी समाई आज यह अज्ञानता,
यों खोजनेपर भी न मिलता हाय! विद्याका पता।
अज्ञानताका राज्य ही दिखता यहां चहुं ओर है,
प्रासाद या वनकी कुटी कोई न खाली ठोर है।

८७

जिनकी सदा प्रतिमा जगत-भर पूजता है प्रेमसे,
तीर्थंकरोंके नाम भी नहिं बोल सकते क्षेमसे।
हा! जीव कहते हैं किसे यह बड़ी ही बात है,
निज धर्मका सिद्धान्त अब कुछ भी न हमको ज्ञात है।

८८

हा! शास्त्रतकका नाम भी आता न हमको बांचना,
आता न हमको सत्य और असत्यका भी जांचना।
तत्वार्थ सूत्र अपूर्वको अधिकांश सूत्तरजी कहें,
वे धर्मको भी तो अहो! अब शुद्ध हा! कैसे कहें।

८९

विद्वान और अविज्ञको जब एक दिन मरना यहां,
रहता नहीं कोई अमर तब व्यर्थ है पढ़ना यहां।
अज्ञानियोंके कार्य भी संसारमें रुकते नहीं,
मनमें समझ करके यही हम ग्रन्थ पढ़ सकते नहीं।

९०

जो जैनगण संसारमें तत्वान्वेषी थे खरे,
आंखें उघाड़ो देखलो वे आज अज्ञानी निरे।
यों एक दिन सद्ज्ञान सागरमें सभी ही लीन थे,
नहिं दीन थे विद्वान् भी किस बातमें हम हीन थे।

श्रीमान्।

स्वर्गीय सुखमें लीन सारे आधुनिक श्रीमान् हैं,
हों मूर्ख ही चाहे अधिकपर विश्वमें विद्वान् हैं।
चहुंओर उनके गेहमें गद्दे तथा तकिये पड़े,
हथियार सज्जित द्वारपर दो चार सेवक भी खड़े।

६२

देखो चंदोवे रेशमी फानूस जिसमें जगमगे,
बाजा पड़ा है पासमें दर्पण वहां अगणित टंगे।
उनके पलंगोंपर मनोहर एक मच्छर-दान है,
भूलोकमें उनका अहो! स्वर्गीय सुख-सामान है।

६३

उनके निकटमें चापलूसोंकी विषम भरमार है,
ताम्बूल हुक्केको लिये नौकर खड़ा तैयार है।
संकेत करते सेठजीके काम हों पूरे सभी,
नहिं पहिनना पड़ता अहो! निज बूट भी करसे कभी

६४

बीभत्स कितने ही टंगे हैं चित्र शयनागारमें,
बहते रहेंगे सर्वदा श्रृङ्गार रसकी धारमें।
चिन्ता नहीं कुछ भी उन्हें कोई मरे अथवा जिये,
आलस्य अपना पूर्णतः अधिकार उनपर है किये।

६५

निज ठौरसे आश्रय विना किंचित् न हिल सकते नहीं,
मोटर विना दो चार पग भी वे न चल सकते कहीं।
निज देह भी देखो किसीको हो रहा अति भार है,
श्रीमान् लोगोंका यहां अब दास ही आधार है।

६६

आसामियों पर वे कृपा करना कभी नहिं जानते,
वे स्वार्थ साधनकी कलायें सर्वथा पहिचानते।
हा! एक रुपया दे सहज जबतक न दो लेंगे सही,
न्यायालयोंका पिण्ड भी तबतक न छोड़ेंगे कहीं।

६७

देंगे न पाई एक भी श्रीमान् विद्या दानमें,
क्या बांधकर ले जायंगे सब सम्पदा श्मसानमें?
यदि जोर देकरके कहो उत्तर बुरा देंगे यही,
श्रम संचिता यह सम्पदा हमको लुटाना है नहीं।

६८

वे मार धक्के भिक्षुकोंको दूर करते द्वारसे,
धर्मार्थ देना पाई भी जाना न उनने प्यारसे।
लाखों उड़ा देंगे सहज ही व्यर्थ अपने नामको,
रमणीक कृत्रिम वस्तुसे भरते रहेंगे धामको।

९९

पदवी मिले किस भांति हमको यत्न वे करते रहें,
वे साहबोंके पद-कमलमें पगड़ियां धरते रहें।
निज भक्ति दिखलाते हुये यों गारडन पार्टी करें,
करते हुये ये कृत्य सब नहिं ईशसे मनमें डरें।

१००

उनके मनोहर कण्ठमें मणि मोतियोंका हार है,
सम्पत्तिवालोंका अहो! साथी सकल संसार है।
कहते किसे जातीयता है द्रव्यका उपयोग क्या?
परलोकमें भी जायंगे ये भोग या उपभोग क्या?

१०१

वंसी बजाते हैं यहां वे सर्वदा आरामकी,
कोई नहीं मर्याद उनके दीर्घतर विश्रामकी।
निज कार्य करनेमें उन्हें होता प्रचुर संकोच है,
सम्पत्तिवालोंकी दशापर आज जगको सोच है।

१०२

चाहें कहीं श्रीमान् तो वे क्या न कर सकते कहो?
निज जातिका दारिद्र्य सब इस काल हर सकते अहो!
पर कौन झंझटमें पड़े किसको यहांपर की पड़ी,
उनके निकटमें तो सदा अज्ञानता देवी खड़ी।

श्रीमान् की सन्तान।

अवलोक लीजे आपही दशा बीस दुर्गुण युत नहीं,
ऐसे यहां श्रीमान् सुत होंगे अहो! बिरले कहीं।
वे जान सकते हैं नहीं क्या वस्तु शिष्टाचार है?
अपने पिताके साथ भी उनका दुखित व्यवहार है।

१०४

करना अवज्ञा पूज्य पुरुषोंकी उन्हें मंजूर है,
विद्या, विनयके साथ ही उनसे हुई अति दूर है।
पड़के कुसंगतिमें कभी वे स्वास्थ्य धन खोते अहो!
वे पूर्वके दुष्कृत्य पर, पर्यंङ्क पर रोते अहो!

१०५

संसारमें यों तो सदा ही जन्म लेते हैं सभी,
उनसी शुश्रूषा क्या कराता विश्वमें कोई कभी!
वे जन्मसे ही कष्ट देते हैं सकल परिवारको,
होते बड़े ही भूल जाते मातृ-ऋणके भारको।

१०६

सब खेलते हैं खेल अपने साथियों से मोदमें,
लेकिन रहे उद्दण्डता श्रीमान् पुत्र विनोदमें।
वे बालकों में जोर दिखलाते अधिक निज द्रव्यका,
हा! ज्ञान कुछ भी है नहीं अपने परम कर्त्तव्यका।

१०७

थोड़ा परिश्रम भी पिता उनसे कराते हैं नहीं,
रखते उन्हें वे लाड़से किंचित् डराते हैं नहीं।
अपराध सारे बालकों के शीघ्र हँसकर टालते,
श्रीमान् अपने पुत्र प्रति कर्तव्यको कब पालते?

१०८

फिरते सदा स्वच्छन्द वे सर्वत्र सुखसे घूमते,
निःशंक देखो रण्डियों के मुख-कमलको चूमते।
अवलोकके सुतकी दशा माता दुखी हा! हो चली,
"ऐसी बुरी सन्तानसे थी मैं सदा बन्ध्या भली।"

१०९

पाती सदन सम्वाद माता पुत्रके दुःखसे भरे,
हा! सोचसे उसके अचानक उष्ण दो आंसू गिरे।
जब वक्र तरुवर हो गया तब सोचसे भी काम क्या,
होता अशिक्षाका नहीं भीषण दुखद परिणाम क्या?

११०

दिखते उन्हें स्कूल बोर्डिङ्ग तीव्र कारागारसे,
होते दुखी अतिशय कुंवर वे पुस्तकों के भारसे।
निश्चिन्त हो दो चार घण्टे बैठ वे सकते नहीं,
लेटे बिना दिनमें उन्हें आराम मिल सकता नहीं।

१११

ज्यों वे बड़े होने लगे त्यों शौक भी बढ़ने लगे,
संध्या समय भ्रमणार्थ मोटर नित्य ही चढ़ने लगे।
जाने लगे दश पांच अनुपम मित्र भी तो साथमें,
आनन्द आता है सदा दश पांचके ही साथमें ?

११२

मन मोहते उनका अधिक बस रंडियोंके गीत ही,
इज्जत न जिनकी है कहीं दो चार ऐसे मीत ही।
रखते सदा ही पासमें निज द्रव्य देकर पालते,
विपरीत इनके ही सदा दुष्काम जो कर डालते।

११३

अध्यात्म विद्यासे इन्हें कुछ पूर्व भवका बैर है,
बस, वाहनोंसे भूलकर नीचे न पड़ता पैर है।
फैशन बढ़ायेंगे सदा वे साहबोंसे भी बड़ी,
तकदीरका ही खोर है लाइन न इङ्गलिशकी पढ़ी।

११४

गाली विना वे शब्द भी मुखसे निकालेंगे नहीं,
दो चार रुपये व्यर्थ भी उनको न सालेंगे कहीं।
निज साथियोंको पेटभर मोदक सदैव खिलायेंगे,
सरकस तथा नाटक उन्हें सप्रेम वे दिखलायेंगे।

११५

इस लोक निन्दाकी उन्हें मनमें न कुछ परवाह है,
माता पिता निज बन्धुओंकी भी न उनको चाह है।
वे मस्त रहते हैं प्रबल अपने निराले रंगमें,
रहना नहीं वे चाहते पलभर कभी सत्संगमें।

११६

निज पेट भी वे भर सकें इतना न उनमें ज्ञान है,
उनके वचनमें देख लो कितना भरा अभिमान है।
है द्रव्य अपने पासमें लो चापलूसी यार हैं,
वे मित्रको ही लूटनेको तो सदा तैयार हैं।

हमारी शिक्षा।

उस पूर्व शिक्षाका जगतसे नाम जबसे उठ गया,
तबसे हमारा धार्मिक श्रद्धान सारा हट गया।
विद्यासदन निःशुल्क भी प्रतिदिन यहांपर बढ़ रहे,
रहकर जहांपर छात्रगण सोत्साह विद्या पढ़ रहे।

११८

अइउण ऋलृक् रटकर किसी विधि पासकर ली कौमुदी
तुम तिर चुके सम्पूर्ण मानों संस्कृत-विद्या नदी।
दश साल श्रम करके कठिन हम न्यायतीर्थ हुये कहीं,
चालीसकी भी नौकरी ढूंढे अहो! मिलती नहीं।

११९

विद्यालयोंसे भी निकलकर जातिहित क्या कर सके,
अध्यापकी करके विवश यह पेट पापी भर सके।
हा! अन्यके आधीन ही सचमुच हमारा प्राण है,
इस दासताके सामने रहता कहां अभिमान है।

१२०

हा! खेद व्यावहारिक उन्हें शिक्षा न दी जाती कहीं,
प्रिय स्वावलम्बनपर कभी दृष्टि दी जाती नहीं।
सेवक बनाना चाहते माता पिता सन्तानको,
भू में मिलाना चाहते क्यों पूर्वजोंके मानको?

१२१

सब सद्गुणोंके साथमें यह शिल्प विद्या है जहां,
जोड़े हुये कर-पल्लवों को प्राप्त हो लक्ष्मी वहां।
अब लक्ष्मिसुत हम वैश्य ही करने लगे हैं नौकरी,
तो सोचिये सेवक जनों की क्या दशा होगी हरी?

१२२

हा! आधुनिक जीवन हमारा सर्वथा परतंत्र है,
शिक्षा बिना परतंत्रताका आ न सकता अन्त है।
विद्यालयोंकी पद्धति जबतक न बदली जायगी,
तबतक पतित यह जाति भी उत्थानको नहिं पायगी।

१२३

कोरी पढ़ाकर एक विद्या हो न हित सन्तानका,
होता नहीं उपयोग कुछ भी उच्च उनके ज्ञानका।
होगी न उन्नत-जाति यह व्यापार विद्याके बिना,
हा! एक अर्थाभावमें करना पड़े दुःख सामना।

प्रतिष्ठायें और प्रतिष्ठाकारक।

होती प्रतिष्ठायें यहां दस पांचसे तो कम नहीं,
पहले गृहस्थों सा तनिक भी आज क्या शम-दम कहीं
भगवानके प्रति भी हमारी भक्ति चाहे हो न हो,
पर नाम रखनेके लिये करते प्रतिष्ठायें अहो!

१२५

गज-रथ चलानेमें हृदय रहता भरा उत्साहसे,
होते अधिक चञ्चल अहोपर पदवियोंकी चाहसे।
शुभ कार्य करके भी कभी सन्ताप होता चित्तको,
क्यों व्यर्थ ही हमने लुटाया हाय! अपने वित्तको।

१२६

जबतक प्रतिष्ठा-कारकोंकी द्रव्यसे पूजा न हो,
तबतक वहां विधि[1] भीतिसे शुभकार्य भी दूजा न हो

---

१ दैव।

ये लोग लेते लोभवश श्रीमान्‌से अति द्रव्यको,
पर कब निभाते हैं वहां सम्पूर्णतः कर्तव्यको।

१२७

वे खर्चसे भी तो अधिक लें खर्च अपने सेठसे,
घर बांध ले जाते मिठाई मुफ्तमें ही पेटसे।
सद्धर्म-मूर्ति मानवोंका एक यह व्यवसाय है,
होती न पाई पासकी व्यय और खासी आय है।

पञ्च।

यों न्याय करनेके लिये बनते सभी ही पञ्च हैं,
उपकार करुणा आदिके नहिं भाव उनमें रंच हैं।
बस, रूढ़ियोंको पुष्ट करना आज उनका लक्ष्य है,
है मूर्खतासे ही भरा देखो यहां अध्यक्ष है।

१२९

नर आयुमें जितना बड़ा वह पंच है उतना बड़ा,
उनका यहां सब ठौर ही अज्ञानसे पाला पड़ा।
रहते हजारों कोश वे तो दूर सुन्दर-नीतिसे,
देते नहीं हैं दण्ड वे सम्बन्धियोंको प्रीतिसे।

१३०

इन चार बातोंपर सदा इनका अधिक अधिकार है,
आचार है, व्यवहार है, व्यापार है, आहार है।
मनके विचारों पर अहो! सत्ता जमाना चाहते,
अपने पुराने रङ्गकी सरिता बहाना चाहते।

१३१

शुभ न्यायके ही हेत पंचोंकी यहां सृष्टि हुई,
परिणाम है विपरीत अब अन्यायकी वृष्टि हुई।
ये मानवोचित कार्यमें भी पाप बतलाते हमें,
हां! रातमें भी सूर्यका सन्ताप बतलाते हमें।

१३२

करते हुये भी पाप इनके साथमें चलते रहो,
हँसते रहो, मिलते रहो, नित हाथ पग मलते रहो।
यदि चापलूसीमें जरा भी जायंगी रह गलतियां,
उड़ जायंगी तत्काल ही फिर तो तुम्हारी धज्जियां।

पञ्चायतें।

कोई दिवस पंचायतोंका विश्व बीच महत्व था,
तब मानवोंमें भी परस्पर एक दिन एकत्व था।
वे न करतीं थीं कभी भी खून विश्रुत सत्यका,
पथ पुष्ट वे करतीं न थीं अन्याय और असत्यका।

१३४

हा ! आज इन पंचायतोंकी हो रही है दुर्दशा,
इन पंचराजोंपर चढ़ा है पक्ष-मदिराका नशा।
निष्पक्ष होके न्याय करना स्वप्नमें आता नहीं,
हा ! दीन मानव आज इनसे न्यायको पाता नहीं।

१३५

अन्याय रूपी चक्किमें हा ! हा ! यहां हम पिस रहे,
होके व्यथित पंचायतोंसे बन्धु कितने खस रहे।
बस, स्वार्थ साधनके लिये होती सकल पंचायतें,
अन्याय और स्वपक्षसे पूरी अखिल पंचायतें।

१३६

जो कुछ प्रथम मिलकर सदन दो चारने निश्चय किया,
उनही विचारोंको अहो ! पंचायतोंमें धर दिया।
वे पुष्ट सहसा हो गये सम्बन्धियोंकी रायसे,
कृत्कृत्य नितको हो गये पंचायतोंके न्यायसे।

१३७

बच जायगा जन विश्वमें तलवारकी भी धारसे,
हा ! बच न सकता किन्तु वह पंचायतोंकी मारसे।
निष्पक्षता तो सर्वथाको हो चुकी उनसे विदा,
जानें प्रभो ! पंचायतोंके भाग्यमेंही क्या बदा ?

१३८

अह केश१ कर्तनपर यहां पंचायतें होतीं कहीं,
सुख शान्तिके दिनमें अहो दुख बीज वे बोती कहीं।
पंचायतें तो आज कलकी मान्यताको खो चुकीं,
अपने हृदयसे सर्वथा सौजन्यताको धो चुकीं।

वहिष्कार।

इन पंचराजोंके निकट अपमान ही हथियार है,
लेकिन समयके सामने वह शस्त्र भी बेकार है।
पापी जिन्हें कहते अभी धर्मिष्ठ वे कहलायंगे,
उन पापियोंकी धारमें सबही सहज बह जायंगे।

१४०

अपराध बिन भी बन्धु कितने जाति च्युत होते यहां,
अपमानसे होके दुखित वे पाप रत होते यहां।
बिछुड़े हुये निज बन्धुओंको फिर मिला सकते नहीं,
उपदेश धारा भूल करके हम पिला सकते नहीं।

१४१

प्रति वर्ष कितने ही मनुज रोते हमारे त्राससे,
होते विधर्मी प्रेमसे जाके हमारे पाससे।

---

१ बाल बनवानेपर।

हा! हा! जरा सी बातसे व्यवहार होता बन्द है,
जो मानवोंकी दृष्टि क्या पशु दृष्टिसे भी निन्द्य है।

१४२

भूदेव१के भी हाथका आहार तुमने कर लिया,
मानों भयंकर घोर पापाचार तुमने कर लिया।
बस, जोड़ कर दोनों करोंको दण्ड लेना चाहिये,
आजन्म, नहिं तो बन्धुओंसे दूर रहना चाहिये।

१४३

यदि रातमें कुछ खालिया भागी हुये तुम पापके,
मन्दिर तुम्हारा बन्द, क्या प्रभु भी किसीके बापके।
जबतक न मीठे मोदकोंसे पेट इनका भर सको,
तबतक जिनालयमें न अपना एक पग भी धर सको

बहिष्कृत।

जिनको निकाला धर्मसे उनकी कथा कहना हमें,
हा! हा! बहिष्कृत बन्धुओंका कष्ट भी सहना हमें।
उनका नहीं कुछ भी गया वे दूसरोंमें मिल गये,
मुरझे हुये पंकज-हृदय तत्काल उनके खिल गये।

---

१ ब्राह्मण।

१४५

हा ! मानवोंका तो यहांपर खूनतक भी माफ है,
पर औरतोंका सूक्ष्मतः होता यहां इन्साफ है।
इन धर्म भ्रष्टा नारियोंकी जो विकट होती दशा,
यों लिख न सकती लेखनी जी थाम करके दुर्दशा।

१४६

दुष्कर्म करनेके लिये करते विवश मानव उन्हें,
पुरुषत्वसे वे दूर, कहना चाहिये दानव उन्हें।
वेश्या बनाते नारियोंको हम निजी अधिकारसे,
करते पृथक उनको जरासी बातपर आगार[1] से।

१४७

हा ! जाति च्युत निज जातिसे करने लगे सबही घृणा,
निर्वाह क्या होता न उनका इस जगतमें हम बिना ?
तैयार रहते दूसरे उनको मिलानेके लिये,
सप्रेम अपने साथमें उनको खिलानेके लिये।

---

१ वर्तमानमें पञ्चायतोंका अन्याय जो जोर-शोर पर है। वे दिन निकट ही हैं जब कि इनको अपने दुष्कृत्योंपर पछताना होगा। जो दशा मध्याह्नके सूर्यकी होती है वही दशा इनकी भी होगी। मनुष्य न्यायका साथी है अन्यायका नहीं।

(लेखक)

समाचार-पत्र ।

हा, कर रहे काले यहां कागज चलाकर लेखनी,
द्वेषाग्नि बढ़ती आज पत्रोंसे यहांपर चौगुनी ।
होते न यदि ये पत्र तो इतनी कलह बढ़ती नहीं,
यह जाति पक्षापक्षके भी पाठको पढ़ती नहीं ।

१४६

होता नहीं मतभेद इतना आज जितना दिख रहा,
शास्त्रोक्त लिखता एक तो पर अन्य कुछही लिख रहा
साहित्यका रहता नहीं है लेख उनमें नामको,
होते दुखी ग्राहक इन्हींमें डालकरके दामको ।

१५०

बस, बस, हृदयके दुर्विचारोंकी अधिकतर पुष्टि है,
अपने प्रयोजन-सिद्धि-हित इनकी हुई अब सृष्टि है ।
निज धर्म सेवाका प्रथम आदेश होना चाहिये,
कटु शब्द लिख विद्वेषका क्या बीज बोना चाहिये ?

१५१

आचार्य वचनोंका उलंघन अब किया जाता यहां,
विपरीत उनका अर्थ भी समझा दिया जाता यहां ।
ले के किसी भी पंक्तिको स्वयमेव लड़ने लग गये,
अपशब्दका उपयोग करके और बढ़ने लग गये ।

१५२

जो आ गया निज चित्तमें तत्काल लिख डाला वहीं,
कागज, कलम, मसिपात्र अपने हाथके, परके नहीं।
फैला वितंडावाद इससे आज जैन समाजमें,
हा, शान्ति भी तो रो रही है शान्तिताके राजमें।

१५३

उत्पन्न होते पत्र नूतन, जीर्ण तजते प्राणको,
थोड़े दिवस जीकर यहां वे प्राप्त हों अवसान१को।
निष्पक्ष लिखना तो किसीने आजतक सीखा नहीं,
निष्पक्षता बिन लोकमें यह सत्य भी देखा नहीं।

१५४

निज द्वेष दिखलाते हुये लिखते कभी नास्तिक जिन्हें,
वे भी कड़े हो धर्म-ठेकेदार लिखते हैं उन्हें।
इच्छा यही है तीव्रतर संसारमें सन्मान हो,
प्रियधर्मका अपमान हो या जातिका अवसान हो।

सम्पादक।

भाषा न आती शुद्ध लिखना पत्र सम्पादक बने,
बस, पूर्णतः वे जातिमें संक्लेश उत्पादक बने।

---

१ अन्त।

निजमान हित संसारमें क्या क्या नहीं करना पड़े,
लेखक, कवि, कविराज, भी सेवक कभी बनना पड़े।

संस्थायें।

हैं जैन संस्थायें यहां पर पूर्वजों के भाग्यसे,
मिलते नहीं हैं कार्यकर्त्ता योग्य हा, दुर्भाग्यसे।
सौभाग्यसे यदि कार्य-वाहक योग्य मानव है जहां,
वह क्या अकेला कर सकेगा द्रव्यकी कमती वहां।

१५७

श्रीमान् लोगोंका न इनकी ओर किंचित् लक्ष्य है,
करता निरीक्षणतक नहीं जो कि बना अध्यक्ष है।
बस, मुख्यकर्त्ताकी वहां चलती निरन्तर पोल है
बाहर दिखावट देख लो, क्या रिक्तही यह ढोल है।

१५८

है द्रव्यकी कमती बड़ी अखबारमें छपवायेंगे,
जनता समक्ष न कार्य करके भी कभी बतलायेंगे।
क्या अभ्रभेदी बिल्डिगोंसे संस्थाका नाम है,
प्रिय है न कृत्रिमता तनिक प्यारा जगतको काम है।

१५९

आता प्रचुर रोना हमें विद्यालयों के काम पर,
होते दुखी वहु छात्र हा, आजीविका बिन धामपर।
पंडित निकलते जा रहे पर है जगह खाली कहां,
निजपेट भरना भी उन्हें हा! हो रहा मुश्किल महा।

ब्रह्मचर्याश्रम।

अव आश्रमोंकी भी दशाको आप कुछ अवलोकिये,
धनवान पुत्रोंकी नहीं सत्ता वहां पर देखिये।
वह पूर्व-शिक्षा पूर्णतः दुर्भाग्यसें मिलती नहीं,
मुरझी हुई मनकी कली उनकी कभी खिलती नहीं।

१६१

हैं आज भी दो चार यों तो ब्रह्मचर्याश्रम यहां,
पर छात्र पढ़नेके लिये पूरे अहो! मिलते कहां।
सन्तान केवल रह गई है अब सगाईके लिये,
हम भेज सकते आश्रमोंमें कब पढ़ाईके लिये।

१६२

प्रिय ब्रह्मचर्या[1] भावमें कितनी कठिनता प्राप्त है,

---

[1] ब्रह्मचर्या भावसे, कैसा हुआ कृश गाथ।
मक्खियां कैसे उड़ें? उठते नहीं हैं हाथ॥
—मैथिलीशरण गुप्त।

हाय, असमयमें यहां जीवन सदैव समाप्त है।
चश्मा विना हम पासकी भी वस्तु लख सकते नहीं,
आधार विन दश पांच पग स्वयमेव चल सकते नहीं।

१६३

देखो जवानीमें यहां कैसा बुढ़ापा आ गया,
अब तो दृगोंके सामने कैसा अंधेरा छा गया।
सर्वांगमें निशिदिन यहां होती भयंकर वेदना,
जो दुःख हों थोड़े सभी ही एक शक्तिके विना।

व्यायाम शालायें।

व्यायामशालायें अहो, अस्तित्व निज रखती यहां
व्यायाम करनेके लिये घर कौन जाता है वहां।
आरोग्य रहना सर्वदा यह वालकोंका कर्म है,
व्यायाम करनेमें गृहस्थोंको बड़ी ही शर्म है।

१६५

सामान ले दो पांव भी चलना कठिनतर हो गया,
यों जग रही है क्लीवता[१] बल वीर्य सारा सो गया।
जब लाजमें आके सकल व्यायाम हमने तज दिया,
तव देखकर अवकाश मनमें भीरुताने घर किया।

---

१ नपुंसकता।

१६६

हम आत्म रक्षा कर सकें इतना न तनमें बल कहीं,
मुरदार चहरों पर तनिक भी वीरताका जल नहीं।
हम देख करके चोरको जगते हुये सो जायेंगे,
हल्ला करेंगे जोरका सर्वस्व जब ले जायेंगे।

१६७

अन्यायियोंके सामने हम कांपते हैं तूल१से,
सुकुमार अतिशय हो रहे देखो, सुकोमल फूलसे।
अह, सह न सकते हैं कभी मध्याह्नके भी घामको,
तांगे विना जाते नहीं दूकानसे भी धामको।

१६८

फिर भी न लायेंगे यदि व्यायामको उपयोगमें,
आजन्म ही सड़ते रहेंगे हम भयंकर रोगमें।
व्यायामशाला जा तनिक इस देहको सुगठित करो,
सुख-शांतिके हित विश्वमें व्यायामको नियमितकरो

औषधालय।

हैं औषधालय भी यहां उपचार करनेके लिये,
जड़से न सत्यानाश कोई रोग जाते हैं किये।

---

१ रूई।

सबही स्वदेशी औषधीका ढोंग वे फैलायेंगे,
प्रच्छन्न१ कितनी ही दवायें डाक्टरों से लायेंगे।

१७०

उनकी दवासे पेटका भी रोग मिट सकता नहीं,
बीमार-मानव भी अहो चिरकाल टिक सकता नहीं।
विज्ञापनों को देखकर तारीफ जो जाते वहां,
कुछ कालमें पैसा लुटाकर लौट आते हैं अहा!

पुस्तकालय।

है पुस्तकालय भी सभीको ज्ञानके दाता सदा,
स्वाध्याय करनेसे वहां कल्याण होता सर्वदा।
आधुनिक-ग्रन्थालयोंमें ग्रन्थ जैसे चाहिये,
अति यत्न करने पर न उनमें ग्रन्थ वैसे पाइये।

१७२

नाटक, सिनेमा घर यहां ऐसे मिलेंगे आपको,
जो शान्तिके बदले बढ़ायें चित्तके सन्तापको।
है इश्ककी उनमें कथा बस। आप पढ़ते जाइये,
यह इश्कबाजी सीखिये दिन २ बिगड़ते जाइये।

---

१ गुप्त।

कविता ।

यह जानतेतक हैं नहीं कहते गणागण भी किसे ?
करने लगे कविता, जगत फिर क्यों न कवितापर हंसे ?
पिंगल पढ़ा नहिं नामको तुकबन्द कोरा छंद है,
हरिगीतिकामें गीतिका चलता सदा स्वच्छंद है ।

१७४

होगी न सुन्दर उक्ति उसमें पद ललित होंगे नहीं,
टूटे हुये अक्षर भला क्या शोभ सकते हैं कहीं ।
है अर्थ साधारण सदा सब ही पुराना भाव है,
निज नाम हो जावे जगतमें यह हृदयकी चाव है ।

जनसंख्याका ह्रास ।

हा ! धर्मसे धनसे तथा जनसे हमारा ह्रास है,
अवलोक करके नाश निज होता न किसको त्रास है ।
जब हम न होंगे लोकमें तब धर्म भी होगा नहीं,
आधार बिन आधेय भी पलभर न रह सकता कहीं ।

१७६

इस ह्रासकी भी ओर क्या जाता किसीका ध्यान है !
जन-नाशही सबके लिये अतिशय भयंकर बाण है ।

इक्कीस[१] प्रतिदिन घट रहे हैं देख लो जैनी यहां,
क्यों चल रही है कालकी हमपर कठिन छैनी यहां।

१७७

एक दिन संसारमें सर्वत्र थे हम ही हमी,
पर आज सबसे भी अधिक होती हमारी ही कमी।
सम्राट् अकबरके समय हम एक कोटि रहे यहाँ
वे धर्म-बन्धु छोड़ हमको हाय, आज गये कहाँ ?

१७८

हा, देखकर घटती विकट बहता दृगोंसे नीर है,
जिसके हृदय होती व्यथा होती उसीको पीर है।
अस्तित्व क्या उठ जायगा अब सोच होता है यही,
क्या अन्य लोगोंकी तरह हमसे रहित होगी मही।

१७९

भूगर्भ स्थित मूर्तियां अस्तित्व फिर बतलायेंगी,
था जैन धर्म कभी यहांपर बात ये प्रगटायेंगी।
होंगे हमारे देव मन्दिर दूसरोंके हाथमें,
विचरा करेंगे हम कहींपर दूसरोंके साथमें।

---

१ तीस वर्षमें जैन समाजके दो लाख आदमी कम हो गये।

सभायें और उनके कार्यकर्त्ता।

कितनी सभायें संगठनके हेत दिन २ बन रही,
पर एकताका नाम भी रहता कभी उनमें नहीं।
रखते परस्पर कार्यकर्त्ता ही हृदयमें द्वेषको,
ऐसी सभाओंसे भला क्या लाभ होगा देशको।

१८१

पाके निमंत्रण वार्षिक जलसा कहींपर कर लिया,
प्रस्ताव करके पास शीतल हो गया उनका हिया।
प्रस्तावको व्यवहारमें वे ला नहीं सकते कभी,
अपनी सभाओंके नियम वे पाल कब सकते सभी।

१८२

सुन्दर सभाओंके प्रमुख बनते यहां श्रीमान् हैं,
नित दूसरोंके ही लिखे रहते सकल व्याख्यान हैं।
वे पढ़ न सकते हैं स्वयं पढ़ता उन्हें भी दूसरा,
हा, अन्य साधारण मनुज नहिं सुन सके उनकी गिरा।

१८३

व्याख्यान दे श्रोतागणोंको आप अति हर्षित करो,
आर्थिक दशाका प्रश्न उनके सामने पहले धरो।
धनके बिना संसारमें होता न कोई काम है,
अपनी सभा श्रम उन्नति-हित कर रही अविराम है।

१८४

चन्दे बिना उनको सभासे फिर न जाने दीजिये,
चातुर्यतासे द्रव्य लेकर स्वार्थ पूरा कीजिये।
आय-व्यय उसकी कभी भी फिर प्रगट करना नहीं,
यह द्रव्य भी करते हजम मनमें तनिक डरना नहीं।

१८५

कितनी सभायें देख लो प्रतिदिन यहांपर बढ़ रहीं,
कोई बुराई कर रहीं कोई भलाई कर रहीं।
भारी सभाओंके लिये पण्डाल होना चाहिये,
सुन्दर छपा अध्यक्षका व्याख्यान होना चाहिये।

उपदेश तथा उपदेशक।

बस! आ गया कुछ बोलना उपदेश देनेको चले,
करते हुये भाषण सभामें बैठ जाते हैं गले।
उपदेशके अनुसार उपदेशक कहीं चलने लगें,
सर्वत्र उनके कृत्यसे उपदेश भी फलने लगें।

१८७

जो यत्न करनेपर कभी उपदेश मिलता था नहीं,
अह, आज तो उपदेश वह बिन यत्न मिलता सब कहीं
उपदेशकोंका आजकल देखो भरा बाजार है,
अब तो टकोंपर शीघ्र उपदेशक यहां तैयार हैं।

१८८

सब खर्च मिलता है सभासे सैर करनेके लिये,
फिर क्यों न हों तैयार जन उपदेश देनेके लिये।
बस, रट लिये दो चार भाषण देखकर अखबारमें,
देते फिरेंगे घूमकर उसको सकल संसारमें।

१८९

श्रोतागणो, जो चाहते हो आप निज कल्याणको,
करते रहो सप्रेम पूजा पाठ संयम दानको।
स्वाध्याय, तप इत्यादि ये सागारके षट्कर्म हैं,
हिंसा, मृषा, स्तेय, आदि विश्व बीच अधर्म हैं।

१९०

"मिल जायगी इनसे तुम्हें अतिशीघ्र ही मुक्ति-रमा,
सत्वेषु मैत्री भाव रखिये शत्रुओंपर हो क्षमा।
दृग, ज्ञान या चारित्रकी महिमा बतायेंगे सदा,
अथवा पुरानी रूढ़ियोंका गीत गायेंगे सदा।"

१९१

सम्प्रति-दशा अनुसार उनको बोलना आता नहीं,
सत्यांश प्रति निज जीभ उनको खोलना आता नहीं
मिलते नहीं श्रोता कहीं उपदेश सुननेके लिये,
उपदेश सुन नीरस कभी विकसित नहीं होते हिये।

१६२

रहते यहां व्याख्यान सारे सामयिक निन्दा भरे,
उपदेशकोंसे पिण्ड छूटेगा हमारा कब हरे।
दस पांच रुपये फीसके वे तो सहज ही मांगते,
अपनी दुरंगी चालको वे स्वप्नमें कब त्यागते ?

१६३

परको लुभानेके लिये ये ढोंग क्या करते नहीं,
अपवाद अथवा पापसे मनमें तनिक डरते नहीं।
श्रीमान् लोगोंकी बड़ाईका विपुल पुल बांधना,
आता इन्हें अच्छी तरहसे स्वार्थ कोरा साधना।

१६४

उपदेशकोंकी देखलो चहुंओर ही भरमार है,
क्या जाति अथवा धर्मका इनसे हुआ उपकार है ?
ये तो परस्पर द्वेषका दुर्बीज बोना जानते,
परकी भलाईमें नहीं अपनी भलाई जानते।

१६५

इस पेट पोषणके लिये करने पड़ें उपदेश सब,
इसके लिये संसारमें धरनें पड़ें दुर्वेश सब।
सुनते रहे श्रोता प्रथम उपदेशको जिस भावसे,
सुनते नहीं हैं आज वे उसको कभी निजचावसे।

१६६

हे सज्जनो, करके कृपा अब आप आलू छोड़िये,
निज पूर्वजोंकी रीतियोंको स्वप्नमें नहिं तोड़िये।
खाते स्वयं आलू तथा हा! अन्य भक्ष्याभक्ष्य वे,
अपने वचन ऊपर कभी देते नहीं हैं लक्ष्य वे।

ब्रह्मचारीगण।

पत्नी नहीं है गेहमें इस देहमें बल भी नहीं,
पाणिग्रहण भी दूसरा अब हो नहीं सकता कहीं।
जो कर नहीं सकते तनिक भी लोकमें पुरुपार्थको,
वे बन रहे हैं ब्रह्मचारी सिद्ध करने स्वार्थको।

१६८

बस, लोक पूजा चाहिये निज धर्मसे क्या काम है,
हैं ब्रह्मचारी पर हृदयमें कामिनीका नाम है।
चिन्ता न है उनके हृदयमें लेश भी परमार्थको,
मर जांय चाहे दूसरा उनको पड़ी है स्वार्थकी,।

१६६

आहार सुन्दर मिष्ट अथवा पौष्टिक होता जहां,
मनमें मुदित होते हुए वे जीमने जाते वहां।
हैं ब्रह्मचारी दूसरोंको ही दिखानेके लिये,
ऊपर रंगे हैं, वस्त्र लेकिन श्याम है उनके हिये।

२००

करते हुए जिस कृत्यको श्रावक-हृदय शरमायेंगे,
उपदेश देकर दूसरोंसे वे उसे करवायेंगे।
हा, हा, लजाते आजकल सब ब्रह्मचारी वेषको,
नित शान्तिके ही नामपर पैदा करेंगे क्लेशको।

२०१

यों बन गये हैं ब्रह्मचारी कर्मको जाना नहीं,
जिस धर्मके पालक स्वयं सच्चा उसे माना नहीं।
जो आ गया इस चित्तमें उपदेश वह देने लगे,
वाग्वीर बन करके कलहके बीजको बोने लगे।

२०२

हैं ब्रह्मचारी और यह यौवन भरा है गातमें,
अवलोकने निज-कामिनीको वे अन्धेरी रातमें।
रहते व्यथित अत्यन्त ही हा, मारकी दुर्मारसे,
प्रच्छन्न तब वे जोड़ते सम्बन्ध इस संसारसे।

भट्टारक।

एक दिन अकलङ्कसे विद्वान् भट्टारक हुये,
निज शक्तिसे जो लोकमें प्रभु-धर्म संचालक हुये।
अह, आज भट्टारक यहां रखते परिग्रह भारको,
मृगराजकी उपमा अलौकिक मिल रही मार्जारको।

२०४

अब नाम भट्टारक यहां सब कृत्य उनके नीच हैं,
जो थे सरोवरके कमल वे हो गये अब कीच हैं।
हा, जान कुछ पड़ता नहीं यह कालका ही दोष है,
अथवा हमारे धर्मपर विधिने किया अति रोष है।

२०५

अब धर्म रक्षक नामपर ये धर्म भक्षक बन रहे,
संसारके आडम्बरों में यों अधिकतर सन रहे।
हैं वस्त्र इनके देख लो रंगीन रेशमके बने,
पीछी कमंडलु भी अहो, इनके सदा मन मोहते।

२०६

गद्दे तथा तकिये भरे रहते सुकोमल तूलसे,
सादा नहीं आहार करते हैं कभी भी भूलसे।
बस, पुष्ट, मिष्ट गरिष्टही इनका सदा आहार है,
पड़ती भयंकर रातको इनपर मदनकी मार है।

२०७

प्रत्येक भट्टारक यहांपर धर्मका आचार्य है,
पर धर्मके अनुरूप तो होता न कोई कार्य है।
कितनी लिखी रहती बड़ी शुभ पदवियां चपरासमें,
रखते परिग्रह सर्वदा संसार भरका पासमें।

२०८

पाखंडियोंको भूपसम सामान सारा चाहिये,
भगवान-प्रतिमा सामने तकिया सहारा चाहिये।
पूजें कुदेवोंको अहो, निज मार्गमें श्रद्धा नहीं,
ऐसे कुगुरुओंसे जगतका क्या भला होगा कहीं?

२०९

सग्रन्थ ये पापी बड़े निर्ग्रन्थसे पुजते यहां,
हा! स्वार्थ साधनके लिये सब ढोंग भी रचते यहां।
परनारियोंके हाथको लेते अहो! निज हाथमें,
अवकाश पा कर बैठते अन्याय उनके साथमें।

२१०

मुनि धर्मका भी स्वांग धरना प्रेमसे आता इन्हें,
उल्लू बनाना श्रावकोंको भी सदा आता इन्हें।
निज यंत्र मन्त्रोंसे डराना दूसरोंको जानते,
हा! धर्मकेही नामपर ये पाप कितना ठानते।

२११

हैं भक्त इनके आज भी बागड़ तथा गुजरातमें,
कर बैठते प्रभुकी अवज्ञा आ इन्हींकी बातमें।
हे श्रावको! होते हुए दृग तुम-नहीं अन्धे बनो,
आके किसीकी बातमें अघ-पङ्कमें मत तुम सनो।

२१२

कर प्रेरणा अत्यन्त ही पूजा करायेंगे कभी,
निःशंक तब निर्माल्य अपनाही बनायेंगे सभी।
पूजा प्रतिष्ठा एक भी होती नहीं इनके बिना,
होती बड़ी ही ठाटसे इनकी मनोहर भावना[1]।

२१३

दश पांच नौकर तो गुरु, रखते सदा ही संगमें,
हा, हा, रंगे रहते अलौकिक ही निराले रंगमें।
ये श्रावकोंको दे सकेंगे हाय कारागार भी,
प्रभुने इन्हें क्या दे दिया है विश्वका अधिकार भी।

२१४

गिरते कुएंमें तो स्वयं पर अन्यको लेके गिरें,
जब हैं यहांपर भक्तगण तब क्यों अकेलेही मरें।
अपने कुकर्मोंसे सहज पातालमें ये जायेंगे,
सहने पड़ेंगी वेदना तब तो अधिक पछतायेंगे।

मुनिगण।

जिनसाधुओंका आजकल हमको अधिकतर भान है,

---

[1] ये (भट्टारक) जिसके घर भावना (आहार) करते हैं। उसका तो दिवालासा निकल जाता है। कभी कभी दो दो तीन तीन सौ रुपया खर्च पड़ जाता है।

उनकी दशाको देखकर होता हृदय क्यों म्लान है।
वे साधु हैं लेकिन हृदयमें साधुता थोड़ी नहीं,
तन वस्त्र-त्यागा किन्तु ममताकी लता तोड़ी नहीं।

२१६

अब भी अहो! उनके हृदय ऐहिक-विषयकी चाह है,
निर्वाण सुख सिद्ध्यर्थ क्या लवलेश भी उत्साह है
वे मान या अपमानका रखते बड़ा ही ध्यान हैं,
मद,मोह,ममता, पक्षता, उनके प्रबल महमान हैं।

२१७

यह मार्ग यद्यपि है सुगम तौ भी कठिन इसकी क्रिया,
पर आज तो बस मानमें मुनिव्रत यहां जाता लिया
वे मूल गुण भी पालनेमें सर्वथा असमर्थ हैं,
असमर्थता वश साधु गण करते अनेक अनर्थ हैं।

२१८

हो दूर वे निज गेहसे फंसते जगतके जालमें,
सौभाग्यसे मिलते कहीं सच्चे गुरू कलिकालमें।
तनपर कभी रखते नहीं तिल तुष बराबर चेल[1]को,
पर कौन कह सकता मनुज उनके हृदयके मैलको।

---

१ वस्त्र।

२१९

सिर केश-लुंचनके लिये जाता यहां मेला भरा,
विज्ञापनों से व्याप्त होती है सकल विश्वम्भरा।
छयालीस दोषोंको कहो कब पूर्णतः वे टालते,
दो चार बातें छोड़,क्या शास्त्रोक्त विधि वे पालते।

२२०

पूजा तथा अभिमानमें उनका हृदय आसक्त हैं,
तप,ज्ञान,संयमसे तरल१ मन सर्वदा ही रिक्त है।
आ मानमें धारण करें वे श्रेष्ठ संयमकी धुरा,
पर अन्तमें अवलोकिये परिणाम आता है बुरा।

२२१

आधीन नहिं हैं इन्द्रियें सब इन्द्रियोंके दास हैं,
हा! व्यर्थ ही निज देहको यों दे रहे अति त्रास हैं।
मार्जार सम लज्जा जनक संसारमें इनकी कथा,
शीतोष्णकी किंचित् कभी भी सह नहीं सकते व्यथा

२२२

जग चित्त-रंजनसे इन्हें गुरुता हुई अब प्राप्त है,
संसार-चिन्तासे हृदय विस्मय। अधिकतर व्याप्त है।

---

१ चंचल।

दुखमें सहज ही छोड़ देते आज कल मुनि धैर्यको,
यों चाहने लगते व्यथित संसारके ऐश्वर्यको।

२२३

चिन्ता उन्हें रहती विकट नित शिष्य गणके वृद्धिकी,
इच्छा नहीं परमार्थकी अभिलाष लौकिक सिद्धिकी
अज्ञान रूपी व्याध दिन २ कर रहा हा! घात है.
आदर्श सुन्दर साधुओं का हो रहा क्यों पात है?

२२४

कोई मुनी निज नामसे चन्दे यहां कर वायंगे,
निज नामकी कोई अहो! छतरी१ यहां बनवायंगे।
वे गुप्त बातों को कहेंगे भक्तजनके कानमें,
वे खिन्न प्रमुदित हों यहांपर मान या अपमानमें।

पण्डित।

जिन पण्डितों का एक दिन संसारमें सन्मान था,
निज धर्मके उत्थानका जिनको बड़ा ही ध्यान था।
करते रहे जगमें प्रकाशित धर्मको निज ज्ञानसे,
हा! आज उन विद्यार्णवोंका व्याप्त मन अभिमानसे

---

१ स्तूप वगैरह स्मारक चिह्न।

२२६

देखो! परस्परकी कलहमें आज उनका धर्म है,
अब उठ गया उनके हृदयसे धर्मका सब मर्म है।
निष्पक्ष होके वस्तु निर्णयकी उन्हें सौगन्ध है,
कहते प्रथमसे रूढ़ियोंका धर्मसे सम्बन्ध है।

२२७

शुभ ज्ञानके बदले हमें अज्ञान धारा दे रहे,
उद्देश बिन ये लोग यों ही धर्म नौका खे रहे।
कचरा हटानेमें तनिक अब ये समझते पाप हैं,
आश्चर्य कारी पण्डितोंके आज कार्य-कलाप हैं।

२२८

हठ भूतके आधीन होकर सत्यकी चोरी करें,
हा! सत्यमें भी व्यर्थकी ये लोग मुंह जोरी करें।
निन्दा तथा बकबादसे कुछ काम चलता है नहीं,
हे पण्डितो! तुम सत्य बोलो सत्यकी सारी मही।

बाबू लोग।

इन बाबुओंने भी यहां कैसी मचाई क्रान्ति है,
जिससे समाजोंमें विपुल सर्वत्र क्रूर अशान्ति है।
सबको मिटा करके अहो। ये एक करना चाहते,
ये निन्द्य बातें भी बहुत सी हाय आज सराहते।

२३०

अब मान ये सकते नहीं निज पूर्वजोंकी बातको,
चातुर्यतासे हाय! अब ये दिन कहेंगे रातको।
करके कुतर्क अनेक विधि वे बात मनमानी करें,
हा! जातिकी हानि करें निज धर्मकी हानि करें।

२३१

बनते सुधारक किन्तु अपने आप वे सुधरे नहीं,
प्रिय भद्र भावोंसे न उनके चित्त लेश भरे कहीं।
हा साधनेकी तो पड़ी है रात दिन ही स्वार्थकी,
आटोप युत वार्ता करेंगे किन्तु वे पुरुषार्थकी।

२३२

जगनिंद्य बातें भी सकल अब सिद्ध करते शास्त्रसे,
करते प्रगट सर्वत्र उनको लेखनी परमास्त्रसे।
निन्दा करें निज पूर्वजोंकी चित्तमें नहिं भीति है,
प्रख्यात होनेकी अहो! कैसी मनोहर रीति है।

२३३

क्या ईशने भेजा इन्हें ऊधम मचानेके लिये,
या धर्म तरुको मूलसे अतिशीघ्र खानेके लिये।
आचार्य-ग्रन्थोंको अहो! सामान्य पुस्तक मानते,
यों जानते कुछ भी नहीं बकवाद कोरी ठानते।

२३४

है अन्य पाषाणों सदृश प्रतिमा यहां भगवानकी,
अब है नहीं कुछ भी जरूरत पूज्य देव-स्थानकी।
अभिमानसे हर वक्त उनका चित्त रहता है भरा,
है तुच्छ इनके सामने विद्वान-मानव दूसरा।

धर्मकी दशा।

जिस धर्मके सिद्धान्तसे संसार जन पुलकित हुये,
दुर्भाग्यसे उसके अलौकिक तत्त्व अब मुलकित हुये।
त्रयकाल तीनों लोकमें विख्यात जिसका कर्म है,
देवालयोंमें भाग करके छिप रहा वह धर्म है।

२३६

प्रभु धर्ममें अतिशय यहांपर बढ़ रहा नितभेद है,
क्या दैवको इस धर्मका हा ! इष्ट ही उच्छेद है।
जो पालते थे प्रेमसे वे हो रहे प्रतिकूल हैं,
देखो ! दिनोंके फेरसे ही फूल होते शूल हैं।

२३७

अब एक ही भगवान हित होता कठिन संग्राम है,
सर्वेश मन्दिर भी जगतमें क्या किसीका धाम है।
तेरह तथा यह बीस पन्थोंका भयंकर रोग है,
हा ! धर्म विध्वंसक यहांपर मिल रहा सब योग है।

२३८
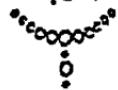
सिद्धान्तके जो गूढ़ भावोंको जरा समझा नहीं,
अपने निराले पंथकी कर डालता रचना वहीं।
कितनों विभागोंमें अहो! यह धर्म दिन २ घट रहा,
अतएव इसका वास्तविक भी रूप इससे हट रहा।

२३९

प्यारा अहिंसा धर्म तो है आज ग्रन्थोंमें यहां,
अपना लिखाना चाहते हैं नाम सन्तोंमें यहां।
वह सार्व भौमिकता कहांपर छिप रही है धर्मकी,
करता रहा जगभर प्रशंसा धर्मके सत्कर्मकी।

२४०

उत्तम क्षमा, मार्दव, प्रभृति तो आजकल दुष्कर्म हैं,
मिथ्या वचन, परिवाद, हिंसा नित्यके सद्धर्म हैं।
दुष्कृत्य बढ़ते जा रहे सद्धर्मके ही रूपमें,
क्या लीन हो जाता नहीं पाषाण निर्मल कूपमें?

२४१

अन्याय पक्षोंको अहो! धर्मान्धतावश खींचते,
होते हुए भी नेत्र दोनों आज उनको मींचते।
कैसी मची भीषण कलह सर्वत्र प्रभु सन्तानमें,
हम मौन हैं संसारमें निज धर्मके अपमानमें।

२४२

हम धर्मको तजने लगे वह होगया हमसे विदा,
अब धर्म है सत्कर्म है केवल हमारी सम्पदा।
यों कर लिया करते कभी हम वंदना जिनराजकी,
कैसे लिखे यह लेखनी धार्मिक अवस्था आजकी।

२४३

हा! घूमता है धर्म प्यारा कौनसे उद्यानमें,
जाता यहां जीवन हमारा भी किसीके ध्यानमें।
जिस धर्मकी उत्कृष्टतासे ज्ञात थे जगजन कभी,
सिद्धान्त उसके उच्चतर अज्ञानसे सोये सभी।

२४४

जो जैनमत संसार धर्मोंका सुभगसिर मौर था,
इस धर्मका धारक न हो ऐसा न कोई ठौर था।
वह हो रहा है संकुचित विधिकी कृपासे ही यहां,
थोड़े यहां हैं वैश्य ही इस धर्मके पालक यहां।

हमारी कायरता।

रहना न चाहें हम कभी वंचित जगत आरामसे,
तब क्या भलाई कर सकेंगे हम किसीकी कामसे।
यों हाय, नस नसमें हमारे क्रूर कायरता भरी,
ओजस्विनी वह पूर्वजोंकी शक्ति हा, किसने हरी?

२४६

हम तो कहानेके लिये अब ईशकी सन्तान हैं,
सप्राण मुख मंडल सभीके शव सदृश क्यों म्लान है।
यदि इन हमारी नाड़ियोंमें पूर्वजोंका रक्त है,
तो शूरता, गंभीरतासे क्यों हृदय यह रिक्त है।

२४७

श्रीराम सोचो सह सके कब जानकी-अपमानको ?
वे शान्त स्थिर थे हुये हरकर दशाननके प्राणको।
भारी सभामें कौरवोंने कष्ट कृष्णाको दिया,
होके दुखी तब पांडवोंने नष्ट उनको कर दिया।

२४८

गुण्डे हमारी भगनियोंकी कर रहे वेइज्जती,
इन पापियोंकी बढ़ रही देखो यहां दूनी गती।
कुछ दंड उनको दे सकें इतना न तनमें जोर है,
अपराध हीनाके प्रति अनरीति होती घोर है।

२४९

अपने भवनमें नारियोंको ही सतानेके लिये,
संग्राम वीरोंसे अधिक उद्दीप्त होते हैं हिये।
हा, देखते लोचन अभागे नारियोंकी दुर्दशा,
षंढ़त्व आकरके कहांसे इस तरह मनमें बसा।

२५०

हा ! तोड़ते लुच्चे लफंगे देव-प्रतिमायें यहां,
अवलोक करके दृश्य भीषण भीरुता छोड़ी कहां।
इसका नमूना देखिये बहु दूर तो कुड़ची नहीं,
जाने हमारा भार कैसे सह रही है यह मही ?

२५१

होता हमारे उत्सवों पर घोर पत्थरपात है,
क्या वह सहारनपुर-कहानी आपको अज्ञात है ?
नर-राक्षसोंने गेहिनीका शील धन कैसे हरा,
अङ्कित रहेगी चित्तमें घटना हुई जो गोधरा।

२५२

रोकी गईं रथ-यात्रायें विश्वमें किसकी कहो,
उत्तर मिलेगा सर्वदा इन जैनियोंकी ही अहो।
सम्मुख बयाना कांड है हा! और शिवहारा यहां,
अपमान जैनोंका जगतमें आज होता है महा।

२५३

चुपचाप बैठे देख लो खाकर तमाचा गालपर,
हँसते जगतके लोग इस आश्चर्यकारी हालपर।
हमने अहिंसा शब्दका अब अर्थ कायरपन किया,
अपना हमींसे तो कभी जाता नहीं रक्षण किया।

२५४

लोकोक्ति गुड़ गीला यथा बनिया रहे ढीला तथा,
निज कार्यसे इस बातको हम कर रहे हैं सर्वथा।
केवल तराजूमें हमारी आज सारी शक्ति है,
उत्थानकी चिन्ता नहीं है सम्पदामें भक्ति है।

२५५

होती नहीं अपनी वसूली भी पठानोंके बिना,
षंढ़त्व वह बाकी रहा जिसकी न भी थी कल्पना।
अब नामके ही हैं पुरुष हममें न कुछ पुरुषत्व है,
संसारमें मनुजत्व बिन निष्काम ही अस्तित्व है,

तीर्थोंके झगड़े।

भगवान सम ही पूजते हैं भक्त तीर्थ स्थानको,
पाया वहांसे ईशने अनुपम सुखद निर्वाणको।
उन तीर्थ क्षेत्रोंमें सदा सुख शान्ति मिलती है बड़ी
जाती बिखर पल मात्रमें सम्पूर्ण पापोंकी लड़ी।

२५७

अब तीर्थ क्षेत्रों के लिये बढ़ता सदा ही वैर है,
करना पड़े उनके लिये अब कौंसिलों की सैर है।
यह जाति हा, हा, विश्वमें शुभ शक्तियों से भ्रष्ट है,
जो शक्ति कुछ अवशेष है उसका मिटाना इष्ट है।

२५८

भगवानके उपदेशकी आती न हमको याद है,
न्यायालयों में द्रव्य कितना हो रहा बरबाद है।
मानें नहीं चाहे कभी भगवानके उपदेशको,
देखो बढ़ायेंगे परस्पर बन्धु भारी क्लेशको।

२५९

यों अब विपक्षी वृन्द निज सत्ता जमाना चाहते,
वे तीर्थ क्षेत्रों को अहो, पैतृक बनाना चाहते।
यों छीनते जाते हमारे क्षेत्रके अधिकारको,
नीचा दिखाना चाहते हैं वे हमें संसारको।

२६०

हा, दुख भरी सुनकर कथा आंसू गिरेंगे नेत्रसे,
सत्कर्मके बदले कमाया पाप हा, उस क्षेत्रसे।
डरता नहीं है बन्धु भी निज बन्धुके ही घातसे,
अपवित्र केसरिया[1] किया है घोर शोणितपातसे।

२६१

आता नहीं जिनको हमारे धर्मका कुछ जांचना,।
आश्चर्य है हम न्यायकी करते उन्हींसे प्रार्थना

---

१ पं० गिरधारीलाल तथा अन्य व्यक्तियोंका मन्दिरमें खून करा डाला।

मार्जार-द्वयका देख लो क्या न्याय बन्दरने किया,
आहार उनका दक्षतासे शीघ्र उसने हर लिया।

२६२

लड़ते जहां घर दो मनुज होता वहां परका भला,
जयचन्द्रके ही द्वेषसे तो राज्य यवनोंको मिला।
सप्रीति हम तो धर्म साधन तक नहीं अब जानते,
भूले अहिंसा तत्वको उसको न कुछ पहिचानते।

२६३

जिसकाल सारे विश्वमें बढ़ती दिखाती एकता,
उस काल हममें बढ़ रही हैं मूर्खता, अविवेकता।
सबही दिगम्बर और श्वेताम्बर प्रभूके पुत्र हैं,
क्यों बन रहे हैं आज वेही तीर्थकारण शत्रु हैं?

२६४

ये तीर्थ जगमें हैं सभीको तारनेके ही लिये,
संग्राम क्षेत्र बना रहे नर मारनेके ही लिये।
हा! हा! निहत्थोंपर कठिन पड़ती पुलिसकी मार है,
इस पामरोचित कार्यको जग दे रहा धिक्कार है।

मन्दिरोंका पूजन।

यों हो रहा है दूर हमसे आज पूजा-पाठ सब,
हा! बढ़ रहा देखो विलासोंका नया ही ठाठ अब।

पूजा करें भगवानकी इतना कहां अवकाश है,
सत्कृत्यका प्रतिदिन यहांपर हो रहा अतिहास है।

२६६

सर्वेश-पूजनके लिये मिलते पुजारी भी यहां,
वे शुद्ध पूजा बोल लें, है ज्ञान इतना भी कहां?
वे द्रव्य पा भरपूर भी कर्तव्यको कब पालते,
अति सौख्यप्रद इस कार्यकी वेगारसी वे टालते।

२६७

जो जानते तक हैं नहीं पूजन-प्रयोजनको जरा,
अन्तःकरण जिनका सदा ही क्षुद्र भावों से भरा।
तीर्थंकरों के नामतक पूरे जिन्हें आते नहीं,
संसारमें जो दूसरा भी कार्य कर पाते नहीं।

२६८

वे द्विज अपढ़ अब तो यहां बनते पुजारी सर्वथा,
कैसे लिखे अब लेखनी इस दुर्दशाकी सब कथा?
है और की तो बात क्या यह आरती आती नहीं,
उनकी क्रियाओं को कहीं भी पूछने वाला नहीं।

२६९

सुन्दर प्रसूनों से प्रभूकी मूर्ति ढंक देते यहां,
सर्वाङ्गमें भगवानके केशर चढ़ा देते यहां।

मानों प्रभूको भी अभी संसार दुःख अवशेष है,
उनकी अवस्थापर विचारों को बड़ा ही क्लेश है ।

२७०

श्रीमान् लोगों ने सदनसे द्रव्य कुछ भिजवा दिया,
धोके पुजारीने उसे सर्वेश-पूजन कर लिया ।
बैठे हुए अपने भवनमें पुण्य उनको मिल गया,
जगकर्म सब शुभ रूप हो क्योंकि वहां श्री[1]की दया।

देव मन्दिरोंका हिसाब ।

देवालयोंके द्रव्यकी भी अव्यवस्था हो रही,
जिसके निकट यह द्रव्य है बस पास उसहीके रही।
जो बाप दादोंको दिया था द्रव्य उनके साथ है,
क्यों दानका दें द्रव्य यों अब तो हमारा हाथ है।

२७२

विश्वाससे जिसके यहां रुपया जमा जाते किये,
प्रस्तुत पुनः होते नहीं वे शीघ्र देनेके लिये ।
देवालयोंका द्रव्य तो जगमें सदा भगवानका,
दाता सभीका है वही, खावें न क्यों धनवानका ।

---

१ लक्ष्मी ।

२७३

पंचायतें इसके लिये होतीं यहांपर है बड़ीं,
छपतीं सतत आलोचनायें विश्व पत्रोंमें कड़ीं।
क्या कर सकें पंचायतें उनकी कड़ी आलोचना,
जिसके हृदयमें द्रव्य देनेकी नहीं है कामना।

२७४

बोलो अधिक तो साफ वे उत्तर सदा देंगे यही,
जो कर सको सो तुम करो अब तो हमें देना नहीं।
मुखिया बने हो व्यर्थके ही स्यानपन क्यों छांटते,
हा! चोर ही अब साहूकारोंको भला यों डांटते।

२७५

जूतों विना भी तो कहीं होती न इसकी बात है,
इसके लिये भादों सुदी चौदश विपुल विख्यात है।
जितना किया है धर्म, उस दिन नष्ट सब कर डालते,
कितने भयानक चित्तके उद्गार क्रूर निकालते।

निर्माल्य विक्रय।

कैसी बुरी है बात सच निर्माल्यको भी बेचना,
जैसे बने वैसे प्रभु-गृह हेत पैसा खेंचना।
निर्माल्य-विक्रयसे कभी भरता प्रभु-भण्डार क्या,
अर्पण किये पर बेचनेका भी हमें अधिकार क्या?

२७७

देवालयोंका द्रव्य जो लाता मनुज निज काममें,
हा ! पासकी भी सम्पदा रहती नहीं है धाममें ।
हा ! लोभवश देवालयोंकी सम्पदा जिसने हरी,
उसने मुदित हो शीशपर निज पापकी गठरी धरी ।

जिनवाणीकी दशा ।

कितना सुखद-साहित्य अब अलमारियोंमें बन्द है,
उसको पवन भी मिल सके इसका न लेश प्रबन्ध है ।
प्राचीन ग्रन्थोंकी नहीं हमको तनिक परवाह है,
अब इस अभागे चित्तको उनकी रही नहिं चाह है ।

२७९

दीमक तथा चूहे उसे निज भोज्य आज बना रहे,
जननी तुम्हारे दर्शनोंको विश्वजन अकुला रहे ।
हा! जीर्ण वेष्ठन भी उसे होता नहीं अब प्राप्त है,
हा! ह्रास इस जगसे तुम्हारा हो चुका पर्याप्त है।

२८०

अनुपम मनोहर ग्रन्थ प्रिय भण्डारमें चाहें सड़ें—
क्या कार्य होता है नहीं जो आज हम उनको पढ़ें ।
प्राचीनताका नाश अपने हाथसे हम कर रहे,
अपमान अपनी भारतीका मूर्खता वश कर रहे ।

२८१

जब ग्रन्थ निज होंगे नहीं तब तत्त्व क्या जाने मही,
आधार बिन होता नहीं अस्तित्वका निर्णय कहीं।
भूगर्भमें कितने हमारे ग्रन्थ-रत्न समा गये,
किस पापसे हे ईश। यों खोटे दिवस झट आ गये?

२८२

आचार्यांने तो लिखे थे ग्रन्थ पढ़नेके लिये,
अलमारियोंमें बन्द रख करके न सड़नेके लिये।
उसकी दशा अवलोक कर निर्जीव भी रोते यहां,
हमसा विकट भी मूर्ख जगमें दूसरा होगा कहां?

स्त्रियां।

सौ शिक्षकोंकी तुल्यता यों एक माता कर सके,
निज प्रेमसे प्रिय पुत्रके अज्ञान तमको हर सके।
सन्मार्ग पर पतिको चलाया सर्वदा ही प्रेमसे,
प्राणेश-हित सर्वस्व त्यागा था जिन्होंने क्षेमसे।

२८४

उन देवियोंका भी पतन संसारमें जैसा हुआ,
त्रैकाल्यमें भी तो नहिं उनका पतन ऐसा हुआ।
जो शान्ति अनुपम प्रेमकी प्रतिमा कहायी गेहिनी,
जिसने बहायी लोकमें शुभ ज्ञानकी स्रोतस्विनी।

२८५

उनके हृदयमें आजकल अतिशय अविद्या राज्य है,
पीहर सुखों के सामने प्राणेश भी हा! त्याज्य है।
वे पत्र पतिका पढ़ सकें इतना नहीं उनने पढ़ा,
माता-पिताओं पर यहां अज्ञान भूत अहा! चढ़ा।

२८६

इन बालिकाओं को पढ़ाकर क्या कराना नौकरी,
विद्या पढ़े बिन बालिका जाती नहीं भूखों मरी।
यह तो पराई वस्तु है इससे हमें क्या काम है,
थोड़े दिनों के ही लिये इसका यहां यह धाम है।

२८७

करके सुताका ब्याह हम निश्चिन्त नित होते अहा!
पर बालिकाके नामपर परिजन सभी रोते अहा!
गृह कार्य करना भी उन्हें अच्छी तरह आता नहीं,
हृदयेश भी पाकर उन्हें आरामको पाता नहीं।

२८८

निज गुरुजनों की तो विनय उनके हृदयसे दूर है,
बस! मूर्खता, अज्ञानता, अविवेकता भरपूर है।
निज सासको देना विकट उत्तर नहीं वे भूलतीं,
वे जान करके ही हृदयमें वाक्य-भाला हूलतीं।

२८९

प्राणेशको देना नहीं वे जानती हैं सान्त्वना,
पूरी न कर सकतीं कभी उनके हृदयकी भावना।
प्रत्येक बातों पर उन्हें आता बड़ा ही रूठना,
अपराध करने पर सुतोंको खूब ही तो पीटना।

२९०

छोड़ें न अपनी हठ प्रबल आजाय परमेश्वर कहीं,
निज पूज्य पुरुषोंका तनिक उनके हृदयमें डर नहीं।
कर बैठती हैं रोषवश दो चार दिनकी लंघनें,
आहार सुन्दर छोड़ करके वे चबायेंगी चनें।

२९१

जाने बला उनकी सभी प्रिय पति मरे अथवा जिये,
प्राणेशके भी कष्टमें रहते मुदित उनके हिये।
पहिली सरीसी देवियोंका अब न इनमें भाव है,
हा, पड़ रहा है जन्मसे ही आज अन्य स्वभाव है।

२९२

समुचित न कर सकतीं कभी पालन निजी सन्तानका,
अब ध्यान भी उनको नहीं है मान या अपमानका।
आके जगतकी भीरुता उनके हृदयमें ठस गई,
गृहदेवियोंसे रम्य भवनोंमें कलह ही बस गई।

सुकुमारता ।

देखो अकेली वे कभी गृहसे निकल सकती नहीं,
मोटर तथा तांगे विना दो पांव चल सकती नहीं, ।
उनके भवनके काम सारे दास या दासी करें,
वे काम कर सकतीं नहीं पतिदेव तक पानी भरें।

२६४

द्विजराज-सेवक हैं भवन-भोजन बनानेके लिये,
दो चार सुन्दर दासियां हैं तन सजानेके लिये ।
पतिदेव सेवाके लिये उनके न कोमल हाथ हैं,
श्रीमान् सतियोंके यहां बस दास सम ही नाथ हैं।

२६५

है कौन ऐसा काम जो इनको नहीं करना पड़े,
निज-कामिनी आदेश पानेके लिये रहते खड़े।
उनके सुपुत्रोंको यहांपर धायगण ही पालतीं,
ये फैशनोंमें लीन हैं सुतपर न दृष्टी डालतीं।

पुत्राभिलाषा ।

पुत्राभिलाषासे यहांकी नारियां करतीं न क्या ?
सादर कुदेवोंके चरणमें शीश निज धरतीं न क्या।
विज्ञापनोंकी कौनसी शुभ औषधी इनसे बचे,
सुतहेत जगका निन्द्य अति दुष्कृत्य भी इनको रुचे।

२९७

गण्डे तथा तावीज बंधवाती फकीरोंसे सदा,
प्रच्छन्न वे दे डालतीं प्राणेशकी बहु सम्पदा।
आके किसीके चक्करों में कान फुकवातीं कभी,
हाफ़िज तथा मुल्लाओंको भी वे बुला लातीं कभी।

२९८

काली, भवानी, देवियोंका ध्यान वे धरती फिरें,
शुभ कार्य उनके नामसेही लोकमें करतीं फिरें।
संतान-हित पाखण्डियोंको मिष्ट भोजन दे रहीं,
सत्कारमें, उनसे जड़ी या राख, मिट्टी ले रहीं।

२९९

वे ढोंगियों के पास जाकर मांगती सन्तानको,
ध्यातीं कभी हैं रामको, हनुमानको, घनश्यामको।
उपवास.व्रत, तप, दान सब सुतहेत ही होते यहां,
पर इन क्रियाओं से जगतको पुत्र मिलता है कहां?

मातृ लिप्सा।

कन्या न होकर भाग्यवश यदि पुत्र उनके हो गया,
वन्ध्या पनेका दोष तब तो सर्वदाको खो गया।
वे फूलकर कुप्पा हुईं अवलोक कर निजनन्दको,
नलिनी हुई विकसित अधिक अवलोक करके चन्द्रको

३०१

कहने लगीं कुछ कालमें वे प्रेमसे प्रियनाथसे,
हृदयेश कब हूँगी मुदित मैं निज वधूके साथसे।
करके कृपा मेरे हृदयका क्लेश हरना चाहिये,
अति शीघ्र भैयाका हमारे व्याह करना चाहिये।

३०२

संसारमें इस देहका कुछ भी ठिकाना है नहीं,
कोई कभी होके अमर इस लोकमें आता नहीं।
निज मृत्युके पश्चात् उसका व्याह है किस कामका,
संग्रामके पश्चात् भी उत्साह है किस कामका।

सासें।

जाया-पतीका सौख्य लख होती हृदयमें दाह है,
होवे न इनमें स्नेह अतिशय यह सदाही चाह है।
निज नारिके ही प्रेम बन्धनमें कहीं बंध जायगा,
वे सोचती है एक दिन तो वह हमें ठुकरायगा।

३०४

अत्यल्पसे अपराधपर देतीं वहूको गालियां,
ऐसी विकट क्यों विश्वमें उत्पन्न होती नारियां।
घर घर बहूकी दोष-गाथाको सदा गाती फिरें,
करतीं स्वयं सब दोषपर निर्दोष बतलातीं फिरें।

बहुएं

आते भवनमें सासका ही रंग कुछ चढ़ने लगा,
हृदयेश भी अब तो कलहके पाठको पढ़ने लगा।
वे नौकरानी सम समझतीं पूज्य अपनी सासको,
सुख-शांतिके बदले बढ़ातीं हैं भवनमें त्रासको।

३०६

करते हुये ऊधम तनिक सर्वत्र बालक फूलसे,
उनके दृगोंमें तो दिखाते हैं भयंकर शूलसे।
कर बैठती उपहास वे निज गुरुजनोंका भी कभी,
निन्दा तथा अपवादसे डरतीं नहीं हैं लेश भी।

पर्दा।

पर्दा बिना दो पांव चलनेमें इन्हें संकोच है,
हा, वज्र इनकी मूर्खतापर आज सबको सोच है।
लज्जा हृदयका श्रेष्ठ गुण आश्चर्य घूंघटमें बसा,
चहुं ओरसे घेरे हुये अज्ञानकी काली-निशा।

३०८

संकोच क्यों होता जगतको मुख दिखानेमें इन्हें,
हमने कमीकी सर्वदा सद्गुण सिखानेमें इन्हें।
मानों प्रगट ये कह रही हैं आज घूंघटसे यही,
जाता रहा है आत्म-रक्षा-भाव हम तटसे कहीं।

३०६

जो नारियां जितना बड़ा घूंघट सदैव निकालतीं,
उतना अधिक प्राणेश प्रति कर्तव्य अपना पालतीं।
इस राक्षसी पर्दा-प्रथासे आत्म बल जाता रहा,
हममें नहीं जब बल अहो, तो नारियोंमें हो कहां।

३१०

चलतीं हुई वे मार्गमें खातीं अनेकों ठोकरें,
समथल न होनेसे कहीं वे हाय, औंधे मुख गिरें।
खसता सरस अंचल कहीं पड़ता अहो, नूपुर कहीं,
उन बन्द नयनों से निकटकी वस्तु लख सकती नहीं।

सोला (शोध)

हे पाठको, सुन लीजिये सोला प्रथाकी भी कहा,
सुनकर यही कहना पड़ेगा यह प्रथा बिल्कुल वृथा।
अति शुद्धताके हेत ही सोला यहां जाता किया,
पर शुद्धतापर तो सदा ही ध्यान कम जाता दिया।

३१२

मैलीकुचैली धोतियोंको अन्य यदि छू ले कहीं,
तब तो रसोईके जरा भी कामकी रहती नहीं।
भोजन-भवनकी धोतियोंमें मैल रहता है छवा,
सोला बिना पर छू न सकतीं वे रसोईका तवा।

३१३

वे वस्त्र गीला पहिर करके काम कर सकती सभी,
पर साफ धोतीको नहीं वे पहिर सकती हैं कभी।
अह, पोंछती जाती डलीमें हाथ आटा डालके,
आटा तथा घी लिप्त धुतिया काम आती काल१के।

३१४

हां, यदि अधिक उनसे कहो उत्तर यही देंगीं हमें,
हम नारियोंके काममें क्या बोलकर करना तुम्हें ?
तुम भ्रष्ट हो छूते फिरो सब जातिको बाजारमें,
यों चल नहीं सकती तुम्हारी भ्रष्टता आहारमें।

३१५

तुम क्या मुझे समझा रहे हो शुद्धता मैं छोड़ दूं,
आके तुम्हारे बातमें सोला प्रथा क्या तोड़ दूं।
अपवित्र यह आहार अब मुझसे न खाया जायगा,
बाजारमें भी बीसियों २का भात तुमको भायगा।

गृहिणी और गहने।

होवे न रहनेके लिये चाहे निकटमें झों पड़ी,
पर देवियोंको तो सदा आभूपणोंकी ही पड़ी।

---

१ दूसरा दिन। २ वासा, अथवा होटल।

आभूषणों को ही अहो, वे आज भूषण मानतीं,
हा, खेद है वे देवियां गुणसे न सजना जानती।

३१७

नित चाहिये पगमे यहां तोड़े बड़े प्रिय पैंजना,
सूना दिखाता पांव तो भी पायजेबों के विना।
पतली कमरमें हो न जबतक सौ रुपेभर करधनी,
रूठी रहे तबतक भवनमें प्राण प्यारी भामिनी।

३१८

इन नारियों का आजकल तो मण्डनोंमें मान है,
अपने सदनकी आयपर जाता न इनका ध्यान है।
होंगे भवन भूषण अमित तो भी सदा ललचायेंगी,
आभूषणों के हेत पतिसे नित्य कलह मचायेंगी।

विधवाओंकी दुर्दशा।

जब हत हृदय करता कभी वैधव्य दुखकी कल्पना,
तब तो रहा जाता नहीं उससे कभी रोये बिना।
हा! बाल अथवा वृद्ध लग्नों का यहांपर जोर है,
अतएव विधवावृन्दका भी आर्तरव घनघोर है।

३२०

पाषाण भी इनकी व्यथाको देखकर रोते अहो,
तन धारियोंका चित्त क्या फिर दुःखसे व्याकुल न हो

निर्दोष निज जीवन बिताना लोकमें अनिवार्य है।
यों जीत लेना कामको अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

३२१

इन देवियोंका चित्त कोमल शोकका भण्डार है,
अन्तःकरण इनका सदा ही हो रहा अतिक्षार है।
ऊपर दिखानेके लिये सर्वेशकी माला जपें,
पर लोहके गोले सदृश अन्तःकरण उनके तपें।

३२२

कविराज, लेखक, लेखनी भी लिख नहीं सकती व्यथा,
संसारमें सर्वत्र ही है दुख भरी इनकी कथा।
घनघोर इनके आर्त्तरवसे सब दिशायें व्याप्त हैं,
शुभकार्य इनकी शापसे ही आज शीघ्र समाप्त हैं।

३२३

उद्देश्य बिन जीना जगतमें क्या किसीको इष्ट है,
कुछ लक्ष्य विधवा वृन्दका नहिं है सहज यह कष्ट है।
वे शीघ्र मरना चाहतीं हैं किन्तु मर सकती नहीं,
परिवार अत्याचारसे शुभ कार्य कर सकती नहीं।

३२४

चहुंओर जीवनमें विकट अन्यायका घेरा पड़ा,
अन्तःकरणमें सर्वदा दुख शोकका डेरा पड़ा।

झरनों सदृश रहतीं बहातीं वे दृगोंसे नीरको,
कोई न कह सकता कभी उनके हृदयकी पीरको।

३२५

हा! आज विधवा वृन्द जगमें सर्वथा असहाय है,
निज पेट पोषणके लिये उनके न पास उपाय है।
बस, कूटना या पीसना ही भाग्यमें उनके बदा,
क्यों लूट लेते हैं मनुज परिवारके पति सम्पदा।

३२६

असहाय जनकी जो दशा होती गहन मझधारमें-
इन नारियोंकी भी दशा है ठीक वह संसारमें।
सद्धर्म कृत्योंमें सदा ही चित्त तो लगता नहीं,
कोई सदा सोता नहीं कोई सदा जगता नहीं।

३२७

वे कर चुकें गृह कृत्य सब तब पासकें आहारको,
चुपचाप सुनतीं हाय! नित वे सासकी फटकारको।
तू तो हमारे गेहमें है भूतनी या डाकिनी,
आते प्रथम ही खालिया तूने अरी! अपना धनी।

३२८

अन्यायसे होके दुखित वे रह न सकती धर्ममें,
वे अन्तमें लाचार होतीं हैं प्रवृत्त अधर्ममें।

तब तो लगे दोनों कुलोंमें अति भयंकर कालिमा,
अपमान सह सकती नहीं जगमें कभी अपनी रमा।

स्त्री-महत्व।

जिस नारि-जातीके हृदयमें वास है मृदु स्फूर्तिका,
यह रूप क्या अवयव सहित है विश्व उज्वल कीर्तिका
संसारके संग्राममें जो जीत देती है हमें,
शुभ नीति दे, निज प्रीति दे, सर्वस्व देती है हमें,।

३३०

जिसके विना प्रासाद१ भी प्रासाद कहलाता नहीं,
देवेन्द्र भी जिसके विना शोभा तनिक पाता नहीं।
जो शौर्य, साहस, बल, पराक्रमकी मनोहर कह कथा,
सन्ध्या समय जो मेट देती है सकल दैहिक२ व्यथा

३३१

यह नारि कहलाती मनुजकी सर्वदा अर्धाङ्गिनी,
सुख दुःखमें वह निष्कपट, निष्कम्प पति अनुगामिनी
उपदेशसे पिघला सकेंगी नारियां पाषाणको,
विकसित सदा करतीं जगतमें नाथके सम्मानको।

---

१ महल। २ शारीरिक।

३३२

जो कोकिलासे भी मधुरवाणी सुखद नित बोलती,
जो कर्ण पुटमें प्रेमसे पीयूष मानों घोलती।
मृदु-फूलकी माला सदृश कोमल मनोहर देह है,
सर्वाङ्ग सुन्दरता भरा लावण्यताका गेह है।

पुरुषोंकी मान्यता।

साधन समझते हैं स्त्रियोंको निज विषयकी पूर्तिका,
अपमान करते इस तरह हम देवियोंकी मूर्तिका।
अब तो समझते हम उन्हें अपनी पुरानी जूतियां,
पर देव हमको मानतीं हैं आज भी वे देवियां।

हमारी भूल।

जो हैं अशिक्षित नारियां इसमें हमारी भूल है,
परिवार ही सारा यहांका ज्ञानके प्रतिकूल है।
हम दोष दें किसको अधिक नहिं दैवकी हमपर कृपा,
निज बालिकाओंके पढ़ानेमें हमें आती त्रपा[१]।

जैन समाज।

हा, आज जैन समाज जगमें शव सदृशही जी रहा,
पीयूष तज करके सुखद अज्ञान धारा पी रहा।

---

१ लज्जा।

मन भेद हा, हा, पड़ रहा है आजकल दूना यहां,
हा, हो रहा नन्दन विपिनही तो सुखद सूना यहां ।

अन्ध श्रद्धा ।

इस अन्ध श्रद्धाका ठिकाना भी हमारा है कहीं ?
अपना हिताहित सोचलें इतनी रही मति भी नहीं ।
परिणामको ही सोच पूर्वज कार्य करते थे बड़े,
पर हम यहांपर रूढ़ियोंके बन गये पालक कड़े ।

अनमेल विवाह ।

चिड़ी सदृश छोटी बहू वर-राज वृद्ध क्रमेल[1] हैं,
इस आधुनिक संसारको पाणि ग्रहण तो खेल है ।
वर योग्य गुण शुभ हों न हों, पर रिद्धि सिद्धि समृद्ध हो
कन्या उसे मिलती भले वह सौ वरसका वृद्ध हो ।

कन्या-विक्रय ।

ऐसे नराधम भी यहां हैं बेचते जो बालिका,
उस द्रव्यसे भरते सतत जो गर्त्त अपने पेटका ।
निज बालिकाका मूल्य ले कितने दिवस नर खायगा,
अघके उदयसे नष्ट धनके साथ तन हो जायगा ।

---

१ ऊंट ।

३३९

सन्तान विक्रेता प्रथम उसके लिये देखें कुआ,
क्या बालिकाका जन्म विक्रयके लिये भूपर हुआ।
सन्तान विक्रेता मनुज संसार भरमें नीच है,
वह निर्दयी, राक्षस, नराधम, पाप रूपी कीच है।

३४०

सम्पत्ति[१] लिप्सासे सुताको जो मनुज दे वृद्धको,
कोढ़ी, अपाहिज, नीच, लूले दुर्गुणी अति ऋद्ध[२]को।
इस लोकमें प्रत्यक्ष ही परिणाम मिलता है उन्हें,
मरकर यहांसे शीघ्रही यमधाम मिलता है उन्हें।

बाल-विवाह।

कैसा भयंकर देखिये यह आज बाल विवाह है,
सन्तानको झट भस्म करनेके लिये यह दाह है।
हम अर्ध विकसित पुष्पको हो क्रूर अतिशय तोड़ते,
असहाय एक गरीबपर क्यों भार जगका छोड़ते।

---

१ कन्यां यच्छति वृद्धाय, नीचाय धन लिप्सया।
कुरूपाय, कुशीलाय, सप्रेतो जायते नरः॥
(महात्मा स्कन्द)

२—सम्पत्ति वाला।

२४९

पत्नी पतिके भावको भी जो समझ सकते नहीं,
निर्दोप वे बालक वधू युत देख लीजेगा यहीं।
अल्पायुमें ही लोकसे अति रुग्ण हो होवें विदा,
आजन्म उनके नामको रोती रहे नारी तदा।

वृद्ध-विवाह।

सब हो गये हैं केश काले शुभ्र सुन्दर तूलसे,
पाणिग्रहणका नाम सुन वे वृद्ध फूलें फूलसे।
बहु वीर्यवर्द्धक औपधि खाकर बनेंगे पुष्ट हा,
सम्पत्तिके ही जोरपर पूरा करेंगे इष्ट हा।

२४४

सुकुमार कोमल बालिका अति यातना पावे कड़ी,
पर वृद्ध पुरुषोंको सदा ही निज प्रयोजनकी पड़ी।
रहते हुये भी नातियों के ब्याह वे अपना करें,
संशय रहित वे नीच नित भण्डार पापों से भरें।

२४५

कहते हुए आती न लज्जा तन हुआ बूढ़ा सही,
तन भांति कोमल चित्त अबतक तो हुआ बूढ़ा नहीं।
हा छीन लेते द्रव्यके बलपर युवक अधिकारको,
बतला रहे हैं मूर्खता अपनी सकल संसारको।

तेरह (मृतक भोज)

हा, एक ओर विलोकिये परिवारके जन रो रहे,
खाके वहीं मोदक मुदित हा! हाथ कोई धो रहे।
इससे मृतक या गेह मालिकको मिली क्या सान्त्वना,
केवल दुराशा मात्र है इससे प्रणयकी कल्पना।

३४७

ऐसे जिमानेसे कभी होता प्रगट क्या नेह है,
हां, मित्रतामें भी अहो, पड़ता प्रबल सन्देह है।
किस शास्त्रमें इसकी कथा यह कौनसा सत्कर्म है,
भारी हमारी भूलसे अनरीति आज सुधर्म है।

अन्तिम दान।

जब द्रव्यको वे बांधकर ले जा न सकते साथमें,
अन्तिम समय कुछ दान दे तब पुण्य लेते हाथमें।
रहते हुये जीवन कभी देना न जाना दानको,
वे नित्य अपनाते रहे अभिमानको अज्ञानको।

देखा देखी।

अब अनुकरण प्रिय हो रहे हैं हम अधिकतर ही यहां,
बस दुर्गुणोंको सीखते सीखें न सुगुणोंको यहां।
भरपूर करते खर्च हम पाई बचायेंगे नहीं,
प्रत्येक उत्सवमें मुदित गणिका नचायेंगे सही।

अपव्यय ।

देखो अपव्ययका यहांपर रोग कैसा है अहा,
धन तुच्छ कामोंमें सदा पानी सदृश जाता बहा ।
सौकी जगह हम चार सौ भी खर्च करते हैं वृथा,
सत्कर्ममें तो द्रव्य देनेकी न करते हैं कथा ।

३५[illegible]

क्यों दूसरोंसे व्यर्थ व्यय थोड़ा यहां जावे किया,
जैसे उसे प्रभुने दिया वैसे हमें भी तो दिया ।
यदि त्रुटि शोभामें यहां थी तो यहां होगी नहीं,
बस नामहित निज गेह भी सानन्द बेचेंगे सही ।

मात्सर्य ।

अब तो हृदयमें ठांस करके भर लिया मात्सर्य है,
होता कहां हमको सहन परका विपुल ऐश्वर्य है ।
तत्पर सदा रहते अहो ! परको गिरानेके लिये,
हैं नष्ट सब ही द्वेषको दूना करानेके लिये ।

स्वच्छन्दता ।

प्रतिदिन प्रगतिसे बढ़ रही है देश की स्वच्छन्दता,
हम धार्मिक सत्कार्योंको कह रहे हैं अन्धता ।
कहते पुराणोंको गपोड़े बात कितने शोककी,
करते अवज्ञा ईशकी नहिं भीति है परलोककी ।

३५४

सबकी चली थी लेखनी नित शास्त्रके अनुकूल ही,
पर आधुनिक लिक्खाड़ लिखते शास्त्रके प्रतिकूल ही
कहते भला क्या नष्ट कर दे चित्तकी स्वाधीनता,
हंसता सकल संसार अब अवलोक ज्ञान विहीनता।

नशेबाजी।

यों देखिये सर्वत्र बीड़ी आजकल संसारमें,
आहारमें, बाजारमें, दूकानमें आगारमें।
टट्टी घरोंमें भी कहीं बैठे निकालेंगे धुआं,
तन सर्व रोग निवारिणी संचार बीड़ीका हुआ।

३५६

उन साहबोंको देख करके चाय हम पीने लगे,
आहारको तजकर अहो! ऊपर अधिक जीने लगे।
होता न कोई काम अब तो हाय! लिप्टनही पिये,
उसके सहारे आज हमसे काम जाते हैं किये।

साहित्यकी अवनति।

हम उच्च ग्रन्थोंका कभी अध्ययन करते नहीं,
सिद्धान्त अपने दूसरोंके सामने धरते नहीं।
अब तो हमारा ज्ञान सारा ही परीक्षामें रहा,
देखो परीक्षा बाद वह फिर ग्रन्थ भाता है कहां!

भक्ति ।

हैं दूर ही तो आज हम अपने सदाके कृत्यसे,
हम कौनसा सत्कर्म करते हैं जगतमें चित्तसे ।
प्रत्येक नरकी आजकल दुर्लक्ष्यमें अनुरक्ति है,
निज ध्येय प्रति श्रद्धा नहीं प्रभुमें कहाँ सद्भक्ति है?

३५६

पढ़ते सदा ही जोरसे हम तो प्रभुके संस्तवन,
फिर भी नहीं विध्वंस होता है हमारा भवविपिन ।
सिरके पटकनेसे कभी होता नहीं कल्याण है,
सद्भक्ति भावोंसे सदा होता प्रगट भगवान है ।

३६१

देखा जगतपति मूर्तिको उपदेश भी बहुधा सुना,
क्या कार्य वह उपदेश करता भक्ति भावोंके विना ।
भावों विना होती नहीं है फलवती जगमें क्रिया,
प्रभुभक्ति भी तो बन रही है अब दिखावटकी क्रिया१ ।

---

१ आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि ।
नूनं न चेतसि मयाविधृतोसि भक्त्या ॥
जातोऽस्मितेन जगबांधव ! दुःखपात्रं ।
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥
—श्रीसूरिसिद्धसेन दिवाकर ।

❀ वर्त्तमान खण्ड समाप्त ❀

एकता मधुरतान।

होते हुये इतना सभी हममें अभी कुछ श्वास है,
हम कर सकेंगे सर्व-उन्नति यह अटल विश्वास है।
सबसे प्रथम हमको जगतमें एक होना चाहिये,
अपने परायेका हृदयसे भाव खोना चाहिये।

२

अति निष्कपट सच्चा सदा रहता जहांपर प्रेम है,
सब सिद्धियोंके साथ ही रहती वहांपर क्षेम है।
अतएव प्रणयी बन्धुओ! तुम प्रेमका प्याला पियो,
आनन्दमें हो मग्न नित चिरकाल तक सुखसे जियो।

३

संचित हुये तृण तुच्छ ही यों बांधते गजराजको,
दृढ़ एकता करती अलंकृत विश्व बीच समाजको।
यों डेढ़ चावलकी पृथक् खिचड़ी सदा पकती जहां,
उन्नति बिचारी बोलिये किस भांति रह सकती वहां

४

जीवन समरमें प्रेम ही जयको तुम्हें दिलवायगा,
आता हुआ संकट विकट डरकर स्वयं टलजायगा।
पशु-पक्षि भी होते विमोहित प्रेमके सम्बन्धसे,
होता नहीं क्या मुग्ध मधुलिह १ भी सुमनकी गंधसे?

---

१ भ्रमर।

भविष्य-खण्ड ।

मनोकामना।

फिरसे प्रभो ! यह धर्म तक मध्याह्नका मार्तंड२ हो,
तेरी दयासे लोकका दुख दूर सब पाखंड हो।
अज्ञान-तमके गर्तमें जो शीघ्र उचासीन हों,
दुष्कर्मसे सब हीन हों सत्कर्ममें मनलीन हों।

६

अवलोक करके अड़चनें साहस कभी हारें नहीं,
उपकार करनेमें कभी आलस तनिक धारें नहीं।
'सत्वेषु मैत्री' मंत्रका सप्रेम आराधन करें,
निश्चिन्त हो निष्काम सब नित धर्मका साधन करें।

७

पीड़ित जनों पर चित्तसे होवे विपुल सच्ची दया,
अघ कृत्य करनेमें हमें आती सदा ही हो दया!
यों साश्रुहर्षित हो अलौकिक गुरुजनोंमें भक्ति हो,
पर कष्ट मोचनके लिये प्रगटित हमारी भक्ति हो।

८

आवे हमारी सम्पदा शुभ कृत्य जगके दानमें,
जिह्वा विकट तल्लीनहो प्रभुके विपुलगुणगानमें।

---

२ सूर्य।

देखा करें प्रतिमा नयन अविराम ही भगवानकी,
चिन्ता हृदयमें हो कभी तो वह स्वपर उत्थानकी।

९

सुनकर कठिन अपशब्द दुर्जनके न मनमें क्षोभ हो,
निज धर्म रक्षाके लिये नहिं देह तकका लोभ हो।
निर्मल हृदय हो शशि सदृश सादा हमारा वेश हो,
अतिशीघ्र ही धन धान्यसे परिपूर्ण प्यारा देश हो।

उत्तेजन।

होने लगा है रम्य प्रातःकाल निद्राको तजो,
दुर्गुण जगतके छोड़के अनुपम गुणोंसे अब सजो।
मनसे वचनसे कायसे अब रूढ़ियोंको छोड़ दो,
फैला हुआ है जाल चारों ओर उसको तोड़ दो।

११

हे बन्धुओं जो पूर्वज थे आज तुम भी हो वही,
ऐसा करो सत्कार्य जिससे शीघ्र अपनाये मही।
आलस्य या मद मोहमें कबतक रहोगे तुम पड़े,
अब तो हमारी उन्नतीके अङ्ग सारे ही सड़े।

१२

संसारमें सन्मार्ग ही अत्यन्त दुर्गम है सदा,
उस मार्गमें चलते हुये आतीं अनेकों आपदा।

श्रेयांसि बहु विघ्नानि यह पूर्वजों की नीति है,
केवल अचल विश्वाससे मिलती सदाही जीत है।

१३

जबतक मनुज जनभीतिसे आगे कभी आता नहीं,
तबतक न अपने रूपको कोई कहीं पाता नहीं।
आदित्य१ यदि तमभीतिसे संसारमें प्रगटित न हो,
तो एक क्षणभरके लिये भी सान्द्रतम२ विघटित न हो

१४

वे वीरवर सानन्द सब उपसर्ग यदि सहते नहीं,
तो आजतक उनके यहांपर नाम भी रहते नहीं।
सुख दुःख तो सबके जगतमें अभ्रसम चंचल अहा,
इनकी न चिन्ता है जिसे वह ही कहाता है महा।

स्वाधीनता।

चारों तरफ अभिव्याप्त हो फिरसे सुखद स्वाधीनता,
छिपती फिरे अब जंगलोंमें हीनता, दुर्दीनता।
परतंत्र रहकर दूध रोटी भी किसीको इष्ट क्या?
परतंत्रतामें शूरवीरों को नहीं है कष्ट क्या?

---

१ सूर्य। २ सघन।

१६

परतंत्र होकर स्वप्नमें चाहो न सिंहासन कभी,
स्वाधीन सुखमय है जगतमें दीन जीवनसी सभी।
स्वाधीनताके हेत हम चिरकाल वन वनमें फिरें,
रहते हुए निज प्राण नहिं परतंत्रता स्वीकृत करें।

१७

जिसका सदा परके सहारे पेट जाता है भरा,
जीता हुआ भी लोकमें वह नर कहाता है मरा।
स्वाधीनता विन आजकल हम तो कहाते श्वानसे,
हा! हाथ धो बैठे कभीके उच्चतर सन्मानसे।

भविष्य।

आशा सदा करते युवक संसारमें शु भविष्यकी,
बातें किया करते पुराने लोग बीते दृश्यकी।
अवलोकके भीषण दशा कर्तव्य पालेंगे नहीं,
तो है अवश्य पतन निकट मनको सभालेंगे नहीं।

स्त्रीशिक्षा।

जबतक न महिला-जाति अनुपम सद्गुणों सम्पन्नहो,
कैसे वहां बलवान भी सन्तान तब उत्पन्न हो।
सबसे प्रथम उनको यहां विदुषी बनाना चाहिये,
निज अङ्गके अनुरूप ही उनको बनाना चाहिये।

२०

इस विश्व नभखगके सदा स्त्री-पुरुष दो पंख हैं,
अपने सुरक्षित पंखसे उड़ते विहग निशङ्क हैं।
गार्हस्थ-गाड़ीके अहो! स्त्री पुरुष हैं दो चक्के,
बस! समचक्कोंसे ही सदा निर्विघ्न गाड़ी चल सके।

२१

जैसे सतत उनके हृदयपर आपका अधिकार है,
यों ठीक उसही भाँति उनका आप पर अधिकार है।
समझो कभी मत नारियोंको निज भवनकीस्वामिनी,
किन्तु उनको मानिये बस निज हृदय अधिकारिणी।

२२

गृहिणी गृहम् हि उच्यते न तु काष्ठसंग्रहको कहीं,
शिक्षित प्रिया बिन लेश भी सन्तानकी उन्नतिनहीं,
शिक्षितबनाना नारिको अत्यन्त आवश्यक सदा,
हा! मूर्ख नारीसे सदनमें क्लेश बढ़ता सर्वदा।

२३

शिक्षित यहांपर एक दिन सम्पूर्ण नारि समाज था,
जगबीच श्रेष्ठ समाज यह हम मानवोंका ताज था।
था अर्द्ध सिंहासन सदा पतिदेवका उनके लिये,
शुभकृत्य ही उन देवियोंसे थे अधिक जाते किये।

२४

हम आज अपने अङ्गको बेकार रखना चाहते,
आखों बिनाही लोकके सब दृश्य लखना चाहते।
अवलोक उनकी मूर्खता मनको व्यथा होगी नहीं?
कर कष्टसे पीड़ित मनुज, सर्वाङ्ग क्या रोगी नहीं?

२५

यह प्राणदात्रि-समाज अब फिरसे बने विद्यावती,
सर्वत्र ही संसारमें इनकी कथा हो गूंजती।
अकलङ्कसे धर्मिष्ठ नर उनसे सतत उत्पन्न हों,
वे वीर हों, गम्भीर हों, रणधीर और प्रसन्न हों।

२६

कर प्राप्त विदुषी बालिका प्रत्येक नर कृतकृत्य हो,
उन नारियोंसे भूमिमें भी स्वर्ग सुखका नृत्य हो।
गृह स्वामिनीके साथही फिरसे बने मन-स्वामिनी,
वे शील-तस्करके लिये होवें भयंकर दामिनी।

२७

करने लगें वे मंत्रियोंका काम पतिके काममें,
वे सौख्यकी सरिता बहा दें शीघ्र दोनों धाममें।
हो एक मन केवल कथनकेही लिये दो गात्र हों,
हृदयेश्वरीके प्रेमके सम्पूर्णतः नर पात्र हों।

२८

सन्तान पैदा का न उनको यंत्र जग जाना करे,
अन्याय अत्याचार कोई भी नहीं ठाना करे।
फिर सोच लीजे आपही परिणाम जैसा आयगा,
संसारका त्रयताप सब क्षणमात्रमें मिट जायगा।

स्थिति पालक।

पीते रहोगे आप कबतक हाय खारे नीरको,
पीटा करोगे आप कबतक निन्द्यवक्र लकीरको।
हा! धर्मके ही नाम पर कैसे कराते पाप हो,
सत्कर्ममें भी अघ दिखाकर क्यों डराते आपहो।

३०

लड़ने लड़ानेसे किसीको भी मिला आराम क्या?
यों ईंट गारेके बिना जगमें बना है धाम क्या?
पारिस्परिकके द्वेषसे मिलता किसीको सुख नहीं,
द्वेषाग्निसे ही कौरवोंका अन्तका जगमें नहीं?

३१

कर लो हृदय कोमल कि जिससे दूर सारी भ्रांति हो,
ऐसा करो सत्कार्य जिससे लोक भरमें शांति हो।
आचार्य-कृत शुभग्रन्थ पढ़कर काममें लाते नहीं,
उनकी किसीको गूढ़ बातें आप बतलाते नहीं।

३२

वह सार्वभौमिकता कहां है आज प्यारे धर्मकी,
हत्या करो मत भूल करके सद्धर्मके शुभ मर्मकी।
नैया तुम्हारे हाथ है उसको डुबा दोगे कहीं,
मुख भी दिखाने योग्य फिर जगमें रहोगे तुम नहीं।

३३

सिद्धान्तको करते प्रगट होता तुम्हें संकोच है,
सोचो विचारो आपही वह अन्यवत् कब पोच है?
उत्साहसे उनको कहो क्यों तेजमें लाते नहीं,
तुम पूर्वजोंकी नीतिको क्यों आज बिसराते सही।

३४

हे विज्ञ! तुम संसार भरमें शास्त्रके विद्वान हो,
फिर क्यों न तुमको जातिके हितका अहितका ज्ञानहो
इस द्वेष तरुवरपर सदा ऐसे विषम फल आयेंगे,
जिसको तुम्हारे धर्म-भाई खा स्वयं मर जायेंगे।

सुधारक।

सुधरो स्वयं निज बन्धुओंको आप शीघ्र सुधार दो,
अभिमान अत्याचारको तुम खोजके संहार दो।
निज बन्धुओंसे ही कभी कल्याण लड़नेमें नहीं,
संसारमें कुछ लाभ तुमको व्यर्थ अड़नेमें नहीं।

३६

लिखते किसीको आप गाली वे तुम्हें लिख डालते,
इस भांति दोनों ही अहो कर्तव्य कब निज पालते।
यह स्वर्ण अवसर व्यर्थही देखो चला जो जायगा,
तब हाय पछताना हमारे हाथमें रह जायगा।

३७

नहिं नष्ट करना चाहिये भगवानके आदेशको,
अपने करोंसे नहिं बढ़ाना चाहिये निज क्लेशको।
जबतक न काला मुख करोगे दुःख दाई स्वार्थका,
तबतक न तुम उपदेश दोगे लेश वस्तु यथार्थका।

३८

जिस डालपर बैठे हुए उस डालको काटो नहीं,
तुम नीर जिसका पी रहे उस कूपको पाटो नहीं।
क्या धर्म निन्दासे तुम्हारी उन्नती होगी कभी,
इस बातको भी आपने मनमें विचारा लेश भी।

३९

दुष्कर्ममें देते मुदित हो आज शास्त्र प्रमाण तुम,
इससे जगतका कर सकोगे लेश क्या कल्याण तुम।
सब बल लगाकर आप करते पुष्टि अपने पक्षकी,
दिन रात यों मिट्टी करो तुम हाय अपने लक्ष्यकी।

४०

हे बंधुओ मिलकर परस्पर काम करना सीखिये,
फिर आपही निज कार्यके परिणामको तो देखिये।
दुष्कर न कोई कार्य है यह संघ शक्ति है जहां,
नित हाथ जोड़े ऋद्धियां या सिद्धियां आती वहां।

साहस।

कर्तव्य करनेके लिये बनना पड़ेगा साहसी,
निज कार्य पूरा कर सकें हैं लोकमें कब आलसी।
सच्चे पुरुष हैं आज हम यह कार्यसे बतलाइये,
खोये हुए निज उच्च पदको शीघ्र फिरसे पाइये।

दैव।

पुरुषार्थ विन देखो हमारा दैव भी फलता नहीं,
यों वायु विन वह तुच्छ पत्ता भी कभी हिलता नहीं।
विधिके भरोसेपर अहो कबतक रहोगे तुम पड़े,
अपने पगोंके जोरपर क्या अब न होगे तुम खड़े।

४२

सब दैवही देता हमें यह बात बस कायर कहें,
नर-वीर जगमें सर्वदा पुरुषार्थ पर अविचल रहें।
अच्छा बुरा ही कृत्य मानवका कहाता दैव है,
परिणाम अपने कृत्यके अनुसार प्राप्त सदैव है।

सत्य ।

यह सत्य ही जगमें रहेगा नित्य जीता जागता,
मिथ्यात्वका काला वदन निजसत्य सन्मुख भागता।
शुभ सत्यके ही जोरपर तो टिक रही है यह मही,
उसकी विपुल महिमा न हमसे आज जाती है कही।

४५

लोकोक्ति कितनी रम्य है नित सांचको भी आंच क्या,
मणिमोल बिक सकता जगतमें एकदिन भी कांचक्या ?
अवलोकते हैं नेत्र सन्मुख दृश्य प्रतिदिन सत्यके,
फिर क्यों न परिवर्तित करोगे भाव अपने चित्तके।

४६

नित सत्यकी ही जीत होती पूर्वजोंका वाक्य है,
सबसे प्रथम सब मानवोंको सत्यही आराध्य है।
जिसके हृदयमें सत्य है सुमहत्व भी रहता नहीं,
हां, काठकी हांड़ी न दूजी बार चढ़ती है कहीं।

नवयुवको ।

मुरदार जीवनमें तनिक अब शक्तिको संचारदो,
मद, मोह मत्सरको हृदयसे शीघ्र अवसंहार दो।
दिखलाइये ढीली नसोंमें भी अभी कुछ रक्त है,
सच्चा, हृदय उन वीर प्रभुकी वीरताका भक्त है।

४८

निज शक्तिके विश्वासपर ही अब विजय पाना तुम्हें,
सन्मार्गमें सबसे प्रथम निशङ्क भी जाना तुम्हें।
उपकार करनेके लिये ही जन्म जगतीमें हुआ,
निज पेटभर करके कहो नहिं कौन इस भूमें मुआ?

४९

तुमको किसीके भय दिखानेसे न डरना चाहिये,
कर्तव्यको सोत्साह जगमें नित्य करना चाहिये।
जो जो तुम्हारे मार्गमें रोड़ा तनिक अटकायेंगे,
वे आप ही उन पत्थरोंमें दैववश गिर जायंगे।

५०

प्रत्यूषका भूला हुआ संध्या समय आवे कहीं,
व्यवहार-दृष्टिमें न वह भूला कहाता है कहीं।
सोये हुए हम जग पड़े सोये नहीं कहलायेंगे,
बस! यत्न करनेसे तनिक खोया हुआ सब पायेंगे।

५१

है कौन ऐसा कार्य जो मानव न जगमें कर सके,
निज हस्तगत वह इन्द्रआसनको सहजही कर सके।
आश्चर्यही क्या धन हमें खोया हुआ मिल जाय जो,
पा कालको मुरझा हुआ भी पुष्पवन खिल जाय जो।

छात्रगण।

छात्रो तुम्हीं पर धर्मकी उन्नति सदा निर्भर रही,
भूली नहीं उपकार अबतक भी तुम्हारा यह मही।
हों साहसी अति स्वावलम्बी छात्रगण जिस देशमें,
क्या नामको भी रह सकेगी मूर्खता उस देशमें।

५३

तुमहो हमारे देशकी अनुपम अतुल प्रिय सम्पदा,
उत्थान अब तुमही करो आशा हमारी सर्वदा।
निज शक्तियोंको पुष्ट करनेके लिये ये दिनमिले,
कंचन-सदृश यदि दिन तुम्हारे व्यर्थही जावेंचले।

५४

फिर हाथमें केवल तुम्हारे सोच ही रह जायगा,
कर अंजुली गत नीर गत जीवन सहज बह जायगा।
होती नहीं संसारमें शिक्षा इति श्री भी कभी.
कोई मनुज आकाशका भी पार क्या पाता कभी।

५५

कीड़े बनो मत पुस्तकोंके बुद्धिको विकसित करो,
यों डिगरियों के लोभसे बर्बाद जीवन मत करो।
संसारमें त्रयकाल तव लक्ष्य नित सर्वोच्च हो,
कोमल हृदय सर्वत्रही दुर्भाव वर्जित स्वच्छ हो।

५६

अभ्यास तुमको सद्गुणोंका शीघ्र करना चाहिये,
सहपाठियोंका यत्नसे सन्ताप हरना चाहिये।
जिस ओर अपने चित्तको इस काल तुम ले जाओगे,
बस इस अवस्थासे सफलता शीघ्र आगे पाओगे।

जातिच्युत।

होके हमारे बन्धु ही हमसे अलग तुम हो गये,
होते नहीं हैं भाव क्या हममें न मिलनेके नये।
अब आ रहे हैं स्वच्छ दिन हममें पुनः मिलजाओगे,
निर्भीक धार्मिक कृत्य शुभ सर्वत्र करने पोओगे।

५८

सद्धर्मपर अधिकार तो सबका सदैव समान है,
जो विघ्न करते धर्ममें उनका बड़ा अज्ञान है।
क्या पापियोंने धर्मको संसारमें पाला नहीं,
उनका हृदय यों सर्वदा ही तो रहा काला नहीं।

मुखिया।

मुखियो। हमारी जातिके सोचो विचारो आपअब,
निज बन्धुओं प्रति भूल करके मत करो यों पाप अब।
यों स्वार्थ साधनके लिये उनको न अब तुम त्रास दो,
जिससे तुम्हारी जातिका प्रतिदिन अधिकतर ह्रासहो

६०

देखो ! तुम्हारे दण्डसे होता न कोई शुद्ध है,
अन्यायसे होके दुखी होता सदा वह क्रुद्ध है।
कहते किसे स्थितिकरण यह आज सबने भुला दिया,
वात्सल्यताका तो अनादर ही यहां जाता किया।

६१

है आज उपगूहन कहां निन्दा छिपानेके लिये,
सब ही हुए हैं दक्ष हा ! दुर्गुण बतानेके लिये।
नारद बने हैं ! आज मुखिया ही लड़ानेके लिये,
विद्वेष और अनीतिकी पुस्तक पढ़ानेके लिये।

६२

अब तो खड़े हो वेगसे सारी कुरीतोंको हनो,
न्यायी सदाचारी तथा निष्कामपर सेवी बनो।
रक्खो सजग जगमें सदा मुखियापनेकी लाजको,
तुम जान करके मत गिराओ जाति और समाजको।

६३

सबही सुधरते जा रहे यदि आप सुधरोगे नहीं,
थोड़े दिवसमें देख लेना नाम भी होंगे नहीं।
इस विश्वके अनुसारही तुमको पलटना चाहिये,
निर्मूल आग्रहपर कभी तुमको न डटना चाहिये।

६४

अब यह न समझो चित्तमें सन्मुख नहीं आदर्श है,
उन वीर पुरुषोंसे कभी खाली न भारतवर्ष है।
उन पूर्वजोंसा वीर मिलना तो सदा दुसाध्य है,
सुन्दर प्रसूना भावमें अब गंध ही आराध्य है।

६५

जो जिस विषयमें नर यहांपर सर्वदा असमान्य है,
इस लोकको वह उस विषयमें सर्वदाही मान्य है।
संसृति-जनोंमें सर्वदा गुण दोष दोनों हों सही,
गुण विज्ञजन करते ग्रहण लवलेश दोषोंको नहीं।

६६

श्रीशान्तिसागरसे विपुल अब भी तपस्वी है यहां,
श्रीमान् चम्पतरायसे उत्तम मनस्वी हैं यहां।
पंडित गणेशीलाल न्यायाचार्य सेवक आज हैं,
साहित्य-रत्न सदृश अहो निर्भीक लेखक आज हैं।

६७

श्रीदेवकीनन्दन सदृश विद्वान टीकाकार हैं,
प्राचीन ग्रन्थोंका सहज ही कर रहे उद्धार हैं।
विद्वान् हैं सिद्धान्तके श्रीमान माणिकचन्दसे,
है दानके दाता यहां पर सेठ हुकमीचन्दसे।

६९

जिनकी कलमसे गूढ़ नेकों ग्रन्थ अनुवादित हुए,
तत्त्वार्थ वार्तिक और गोम्मटसार संपादित हुए।
उन न्यायतीर्थ विशेष ज्ञानी श्रीगजाधरलालका,
उपकार शुभ क्योंकर भुलाया जाय उन्नत भालका।

विधवा-सम्बोधन।

बहिनो! तुम्हें निज चित्तमें व्याकुल न होना चाहिये,
प्राणेश स्मृति कर नई दुखसे न रोना चाहिये।
परिणाम यह तुमको मिला है पूर्वके दुष्कर्मका,
अब तो जरा पालन करो निश्चिन्त हो निज धर्मका।

७०

है धर्म ही सबका सहायक सर्वदा दुख शोकमें,
इन प्राणियोंके साथ भी जाता यही परलोकमें।
जितने जगतमें जीव हैं यह धर्म उनका मित्र है,
होता इसीसे जीव पापी भी सदैव पवित्र है।

७१

आँसू बहानेसे अधिक घटती नहीं मनकी व्यथा,
अतएव अब तो शोक करना सर्वथा ही है वृथा।
अद्भुत तुम्हारी धीरताका यह परीक्षा काल है,
विधिकी कृपासे ही तुम्हारा रिक्त सहसा भाल है।

७२

प्रत्यूष-संध्याकाल सम सुख-दुख हुआ करते यहां,
अप्राकृतिक सुख दुःखमें हर्षित मुदित होना कहां।
सप्रेम उत्साहित सदा गृह कार्यमें तुम रत रहो,
चिन्ता-चितामें व्यर्थ ही कोमल न इस तनको दहो।

७३

शोभा नहीं कुछ भी तुम्हारी व्यर्थके शृङ्गारमें,
कोई नहीं अब तो रिझानेके लिये संसारमें।
दुर्वासनाका दास हो रहना किसीको इष्ट कब,
बस! चाहिये सहना सदा वैधव्यका अति कष्ट अब।

७४

शुद्धाचरणमें ही तुम्हारा भगनियो! कल्याण है,
सचमुच अनाथोंका यहांपर नाथ वह भगवान् है।
निर्भीक हो तुम तो हृदयसे लोक सेवा आदरो,
उन्मार्गमें तुम भूल करके भी कभी मत पग धरो।

७५

उन्मार्गमें चलकर किसीको क्या जगतमें सुख मिला,
यों अग्निके संसर्गसे बाला न किसका तन जला।
सन्मार्गमें चलकर मनुज पाता सदा ही शान्ति है,
सब शक्तियोंके साथ ही बढ़ती हृदयकी कान्ति है।

७६

यह तो सभी ही जानते हैं विश्वमें दुख घोर है,
पर दुःख सहनेके लिये भी चित्त वज्र कठोर है।
जिस भांति अति हँसते हुये जग-सौख्यको भोगा यहां
उस भांति अब तो दुःखको भी चाहिये सहना यहां।

७७

तुम शीलके तस्कर-वदन पर दो तमाचा खींचके,
जो जा बसे यमलोकमें अपने दृगोंको मींचके।
कर गुप्त पापोंको बढ़ाओ मत कभी भूभारको,
अन्तः करण मजबूत है दिखलाइये संसारको।

७८

क्या सौख्य मिलता है मनुजको तीव्र विषयाशक्तिसे,
धोना न पड़ता हाथ उनको क्या अलौकिक शक्तिसे।
सोचो विचारो आप ही जगकी दुखद दुर्वासना,
त्रैलोक्य तीनों कालमें भी है न सुखकी साधना।

७९

वह नर नहीं है देव है इस लोकका आराध्य है,
जिसका यहांपर सर्वदा परमार्थ-सुख ही साध्य है?
निज धर्म साधन ही तुम्हारा रह गया अब कार्य है,
माता-पितासे भी तुम्हारा कष्ट यह अनिवार्य है।

८०

अब मानसे अपमानसे खेदित न होना चाहिये,
यों व्यर्थ बातोंमें न अपना काल खोना चाहिये।
अवसर मिला अतएव अब लो धर्मका साधन करो,
पाई हुई पर्यायको शुभ कृत्य कर पावन करो।

व्यर्थ-जीवन।

जो है न विद्यावान१ नर धर्मी नहीं दानी नहीं,
सत्कर्मका कर्त्ता नहीं गुणवान भी ज्ञानी नहीं।
वह नर सदा संसारमें बस! भूमिका ही भार है,
नर रूपमें प्रगटित हुआ मृगका विकट अवतार है।

८२

शुभ शक्तिके रहते हुए उपकार नहिं जिसने किया,
होते हुए भी सम्पदा नहिं दान दीनोंको दिया।
सुन आर्तवाणी बन्धुकी जिसका नहीं पिघला हिया,
सेवा न की यदि लोककी तो व्यर्थ वह जगमें जिया

८३

मैं कौन हूं? गुण कौन मेरे और क्या अब प्राप्त है।
किस कार्यहित मानव हुआ मैं कौन सच्चा आप्त है,

---

१ येषाम् न विद्या न तपो न दानम, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः
ते मृत्यु लोके भुवि भारभूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।

है विश्व सेवा वस्तु क्या जिसने विचार किया नहीं,
होके मनुज भी लोकमें वह हाय ! हाय ! जिया नहीं।

८५

आहार या आराम ही जिसको सदा अतिइष्ट है,
गौरव स्वयं ही हाथसे करता अहो वह नष्ट है।
आये यहां जैसे अहो वैसे चले वे जायंगे,
अपकीर्तिकी ही पोटरी निज शीशपर ले जायंगे।

त्यागियो।

यह वेश धरकरके तनिक उपकार निज परका करो,
उपदेश देकर जातिकी अज्ञानताको तुम हरो।
सद्धर्मकी महिमा कृपाकर आप अब बतलाइये,
सन्मार्ग विमुखोंको सहज सन्मार्गमें भी लाइये।

८६

अब नाम त्यागी हो न केवल भाव त्यागी हूजिये,
निज साधुतासे शीघ्र ही कल्याण जगका कीजिये।
जिस जातिका खाते जरा उस जातिकी रक्षा करो,
यदि यह नहीं स्वीकार तो अपनी पृथक भिक्षा करो।

धर्म-धन।

जब धर्ममें आसक्त थी सम्पूर्ण यह भारत मही,
दुख शोक कोई भूल करके भी न पाता था कभी।

सत्कर्मको हम छोड़कर दुष्कर्ममें जब पड़ गये,
दुष्कर्मके ही गर्तमें तब अङ्ग सारे सड़ गये।

आदेश।

संसारमें आके तुम्हें सत्कर्म करना चाहिये,
परकी व्यथा सप्रेम सादर शीघ्र हरना चाहिये।
यह शुभ अशुभही कर्म तो रहता सदा है साथमें,
परलोकमें जाता यही जाता न कुछ भी साथ में।

प्रार्थना भगवान आदिनाथ।

हेआदिप्रभु करुणाकरो! करुणाकरो! करुणाकरो!
भववेदना सत्वर हमारी नाथ अब आके हरो।
सर्वाङ्ग अतिशय जल रहा है घोर भवआतापसे,
तुम हो दयालू इसलिये करते विनय हम आपसे।

श्री अजितनाथ।

जो नर हृदयमें आपके सद्गुण तनिक धारण करे,
कलिमल उसे अवलोक करके दूरसे अतिशय डरे।
प्रभु आपकी दिव्यध्वनी करती जगत भरको सुखी,
करके श्रवण घनगर्जना होता न क्या केकी सुखी।

श्रीसंभवनाथ ।

सुख प्राप्ति आशासे प्रभो ! मैं तो यहाँ फिरतारहा,
बस ! ठोकरें खा पापकी दुख कूपमें गिरता रहा ।
करके कृपा अब लीजिये यह हाथ अपने हाथमें,
यों छोड़कर तुमको कहो किसको बनाऊं नाथ मैं।

श्रीअभिनन्दन ।

हे नाथ ! अभिनन्दन यही है कामना मेरी सदा,
तुममें रहे अविचल अटल सद्भक्ति मेरी सर्वदा।
जिसके हृदयमें आप हो उनको न दुख होता कहीं,
आदित्यके सन्मुख अंधेरा ठहर सकता ही नहीं ।

सुमतिनाथ ।

जीता प्रभो तुमने सहज मदमोह काम क्रोधको,
देते रहे संतप्त जनको आप ही सद्बोधको ।
हेसुमतिनाथ ! जिनेन्द्र अब सद्बुद्धिदो ! सद्बुद्धिदो !
कर्तव्यनिष्ठा बल सुसाहसमें हमें तुम वृद्धिदो ।

श्रीपद्मप्रभु ।

हे आर्य ! पद्मप्रभ ! जगतमें आप सर्वोत्तम सदा,
लक्ष्मी अहो रहती तुम्हारे पाद-पंकजमें सदा ।
मैं वन्दना करता तुम्हारी सर्वदा त्रययोगसे,
अब मुक्तकर दीजे हमें हे नाथ ! ऐहिक रोगसे ।

श्रीसुपार्श्वनाथ।

यों कौन कहसकता यहांपर उन प्रभूकी गुणकथा,
करके श्रवणही नाम जिनका मिटरही मनकी व्यथा।
रिपुमित्रमें भी सर्वदा प्रभु आपका समभाव है।
होता बड़ों का विश्वमें अत्यन्त उच्च स्वभाव है।

श्रीचन्द्रप्रभू।

मेटो हृदयका सान्द्रतम अतिशीघ्रही चन्द्रप्रभो,
जगती तुम्हीको मानती है चन्द्रमा अपना विभो।
द्युतिहीन होता है दिवसमें इन्दु वह सकलङ्क है,
तूही सदा दैदीप्यमान निरभ्र है अकलंक है।

६७

वह तो कलानिधि आपके सन्मुख कलानिधिहैनहीं,
यों जन-कुमुद बान्धव तुम्हीं हो वह कुमुद-बाधवनहीं
ज्योत्स्ना तुम्हारे देहकी व्यवधानविन प्रगटित रहे,
शशिहीनता करता प्रगट तव पाद-नट अङ्कितरहे।

श्रीपुष्पदन्त।

हे पुष्पनाथ! जिनेन्द्र,तुमसब आधिव्याधि विहीन हो,
आटोप सारा त्यागकर निजरूपमें लवलीन हो।
सम्पूर्ण तीनों लोक दिखते हैं तुम्हारे ज्ञानमें,
तव-तुल्य होते शीघ्रवे जो लीनतव गुणगानमें।

९९

है सौख्यदायी लोकको भगवन् तुम्हारा संस्तवन,
खिलता तुम्हारी सदृकृपासे ही हमारा म्लान मन।
प्रभु कीजिये ऐसी दया जिससे जगतको दुख न हो,
सुख शांतिही बरसाकरे कोई कभी व्याकुल न हो।

श्रीशीतलनाथ

अज्ञान रूपी मैल जगका आप प्रक्षालन करो,
सन्तान अपनी मानके अब तो प्रभो पालन करो।
शीतल महीतल आपसे भगवन् सदा होता रहा,
बस, आपसे ही ज्ञानका संसारमें सोता रहा।

१०१

शीतल जिनेन्द्र सदैवहो सद्धर्मके धाता तुम्हीं,
आशरणशरण आधार हो, इस विश्वके त्राता तुम्हीं
उस चन्द्रमामें है अलौकिक पूर्ण शीतलता नहीं,
सम्पूर्ण शीतलता जगतकी आपमें आके रही।

श्रीश्रेयान्सनाथ

सम्पूर्ण देवोंमें अहो श्रेयान्सनाथ प्रधान हैं,
अर्चा, स्तुति जिनकी सहज देती विपुल कल्याण है
अतएव भगवन्! आपही संसारके नायक सदा,
यों आपको तज विश्वका कोई नहीं नायक कदा।

१०३

प्रभुजन्मसेही आपमें ममता तथा माया न थी,
यों अन्यमनुजोंके सदृश बलहीन तब काया न थी।
ये भव्यजन पाके तुम्हें होते अधिक निश्चिन्त हैं,
प्रभुवर तुम्हारे जोरपर करते जगतका अन्त हैं।

श्रीवासुपूज्य।

हे वासुपूज्य! सुपूज्य तुमही अन्य पूज्य न हैं हमें
अभिमान तज नरपति अमरपति शीश चरणोंमें रमें
जिसके हृदयमें आपहो वह ही जगतमें धन्य है,
निर्ग्रन्थ है सत्पन्थरत तू ही सदैव अनन्य है।

१०४

तेरी यहांपर नित्यही महिमा अपार अनन्त है,
तू कष्ट जलनिधि पारकर्त्ता सिद्धि-कान्ता कन्त है।
भगवान पद अरविन्दका जिसने जरा अश्रय लिया,
उसने सहजमें देखलो यमराज तकका क्षय किया।

श्रीविमलनाथ।

हे विमलनाथ! बृहस्पति गुणगान कैसे कर सके,
गुणगान करते आपका हे नाथ जब गणधर थके।
करते मनुज गुणगान तेरा भक्तिके आधीन हो,
क्या बोलती कोकिल नहीं मधुकालके आधीनहो।

१०७

सचमुच प्रभो ! सार्थक तुम्हारा सर्वथा संनाम है,
अद्भुत तुम्हारा नाम करता मंत्रका ही काम है ।
जन नाम लेके आपका क्या कार्यकर सकता नहीं,
मृगराज भीषण वह्निसे भी वह न डर सकता कहीं ।

श्रीअनन्तनाथ ।

जगदीशनाथ अनन्तके सद्गुण अपार अनन्त हैं,
लोकेश, अच्युत, बुद्ध, शंकर देव अनुपम सन्त हैं ।
जिनकी अलौकिक मूर्तिपर ये नेत्र गढ़ जाते अहा,
अवलोक दृढ़-बन्धन जगतके शीघ्र सड़ जाते अहा ।

१०६

जिनराज पास सदैवही सवही अनंत अनन्त है,
निशंक निर्भय सज्जनोंको मान्य उनका पन्थ है ।
भगवन् ! तुम्हारे ही चरणमें अव हमारा शीश है,
करुणा सदन सहृदय सुखद तू ही जगतका ईश है ।

श्रीधर्मनाथ ।

हे धर्मनाथ ! किया मुदित विध्वंस जग-दुष्कर्मको,
प्रभु आप वतलाते रहे सद्धर्मके ही मर्मको ।
दुख-दर्दसे उद्धारकर सन्मार्गमें धरते रहे,
आदित्यसम संसारका अज्ञान-तम हरते रहे ।

१११

हे नाथ! कहते हैं सभी ही धर्मकी प्रतिमा तुम्हें,
हम सोचते मिलती नहीं जो आज दें उपमा तुम्हें।
हे, हे, दयासिन्धो, कठिन हम यातना पाते यहाँ,
उद्धार करनेके लिये स्वामी न क्यों आते यहाँ?

श्रीशान्तिनाथ।

हे शान्तिनाथ, जिनेन्द्र तव अन्तःकरणमें शांति थी,
पर पौद्गलिक इस देहमें भी तो अलौकिक कांतिथी।
होते न थे दृगतृप्त जनके रूपको अवलोकके,
प्रभु आपसे सुन्दर कहाँ थे सुर अहो! सुरलोकके।

११२

सब त्याग दीनी-सम्पदा फिर भी अतुल ऐश्वर्य था,
अवलोक करके दृश्य यह सबको बड़ा आश्चर्य था।
त्रिपुरेश! तुमतो बाह्य-अभ्यन्तर विभूतीयुक्त थे,
आश्चर्य होता था यही तुम वस्त्रसे भी मुक्त थे।

श्रीकुन्थुनाथ।

हो! चक्रवर्ती आपने निर्भीक निज शासन किया,
निज पुत्र सम सारी प्रजाको प्रेमसे पालन किया।
नश्वर समझ कर राज्य वैभव प्रेमसे तुमने तजा,
प्रस्तुत हुये उत्साहसे तब कर्मको देने सजा।

११५

जिस भांति पहले राज्यमें विध्वंस रिपुओंका किया,
अब कर्म रिपुओंका हृदयसे नाश वैसे ही किया।
करते हुये भी कृत्य यह उनमें न राग द्वेष था,
ममता न थी, चिन्ता न थी, नहिं कोप भी तो लेश था।

श्रीअरनाथ।

अरनाथ! आप सदैव ही इस विश्वके नेता रहे,
निज शक्तिसे ही लोकके मिथ्यात्वके जेता रहे।
बस! आपका ही सर्वथा निज पर प्रकाशक ज्ञान था,
तप राशि तेज निधान महिमावान तू भगवान है।

११७

नहिं खेद कुछ मनमें हुआ स्वर्गीय-सुखको छोड़ते,
सहजा ललित ललनाङ्गनाओं से वदनको मोड़ते।
भवभोगको सुख मानता, समझे न वस्तु स्वरूपको,
विष मानता नर भोगको जब जानता निज रूपको।

श्रीमल्लिनाथ।

हे मल्लिनाथ! जिनेन्द्र जो करता तुम्हारी वन्दना,
करना न पड़ता फिर उसे ऐहिक दुखों का सामना।
प्रभु आपकी दिव्य ध्वनि पड़ जाय कानों में कहीं,
मद, मोह, मत्सर चित्तमें पलमात्र रह सकते नहीं।

११६

निज वीरतासे मोहकी सब सैन्य दी तूने भगा,
कल्याण करनेके लिये निशिदिन रहा प्रभुवर जगा।
गुण सिन्धु,जगवान्धव,अकारण सर्वदा निष्पाप है,
कृतकृत्य जगसे हो ‥के बाकी न कार्य कलाप है।

श्रीमुनिसुव्रतनाथ।

प्रभु! आपका यश फैलता है आज भी संसारमें,
होती नहीं है कौन सी शुभ शक्ति भी उपकारमें।
निज नाथ माना था जगतके पूज्य मुनियोंने तुम्हें,
तबसे जगत कहने लगा अनगारका नायक तुम्हें।

१२१

अविचल,अबाधित,जग दिवाकर आपही अम्लान हो,
हो तत्त्वरूप, दयानिकेतन आप सर्व प्रमाण हो।
चिन्तामणी चिन्मय तुम्हीं चारित्रके आगार हो,
हो कष्टके हर्ता तुम्हीं ही सर्वदा अ वकार हो।

श्रीनमिनाथ।

नमिनाथ! निर्मल आपकी वाणी सदा निर्दोष है,
तेरा हृदय ही लोकमें अनुपम गुणोंका कोष है।
अपरागता प्रतिमा तुम्हारी ही स्वयं करता प्रगट,
निर्भीक हो क्योंकि नहीं है शस्त्र भी तव सन्निकट।

१२३

गुणगान सुनकरके किसीसे तुम मुदित होते नहीं,
निज वाच्यतासे भी कभी तुम तो दुखित होते नहीं।
इन कर्म रिपुओंने प्रभो स्वातंत्र्य मेरा हर लिया,
रक्षा करो! रक्षा करो! इनसे अहित जाता किया।

श्रीनेमिनाथ।

हे नेमिनाथ, पवित्र तुम सम्पूर्ण गर्व विहीन हो,
संसारको सद्बोध देनेमें अतीव प्रवीन हो।
अब तो तुम्हारी ओर ही यह झुक रहा अन्तःकरण,
लाके दया अपने हृदयमें मेटियेगा भव-भ्रमण।

१२५

जिससे न जगमें घूमना हो युक्ति वह बतलाइये,
यह मोहका पर्दा हमारा आप शीघ्र हटाइये।
होते हुये भी नेत्रके हम आज अन्धे बन रहे,
सन्मार्गको हम छोड़कर उन्मार्ग हीमें चल रहे।

श्रीपार्श्वनाथ।

जिस शक्तिसे दैत्येन्द्रका उपसर्ग प्रभु तुमने सहा,
करके दया वह शक्ति कुछ भी दीजिये हमको अहा!
यह विश्वमें विख्यात है हम तो तुम्हारे दास हैं,
फिर भी अपार अनन्त भीषण सह रहे क्यों त्रास हैं?

१२७

'देखो अमुकका दास कितना दीन है !' यह दोष है,
इसमें हमारा क्या गया मिलता तुम्हें ही दोष है।
कहते सदैव पुकार यह तारो हमें तारो हमें,
अब अन्ततक संसारमें पलभर न छोड़ेंगे हमें।

श्रीवीरनाथ।

करता विनयसे वन्दना शतवार मैं प्रभु वीरकी,
सीमा प्रभो पूरी करो अब तो हमारी पीरकी।
दुख दर्दको सहते हुए उकता गया है यह हिया,
अतएव घबड़ाकर तुम्हारा ही प्रभो आश्रय लिया।

१२९

अनुमान करता आप अपनी अब दया दिखलायेंगे,
सन्तानका दुख-क्रूर अब तो आप शीघ्र मिटायेंगे।
भीषण दुखोंकी वेदनासे बह रहा दृग नीर है,
भव-यातनाको मेट दे तू वीर ! सच्चा वीर ! है।

नवीन छपे हुए ग्रंथोंकी सूची